दिव्य दयानन्द

❀ ओ३म् ❀

आदर्श चरितावली-३

दिव्य दयानन्द

17

लेखक

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक :
गोविन्दराम हासानन्द
आर्य साहित्य भवन,
४४०८, नई सड़क,
दिल्ली-११०००६

तृतीय संस्करण : १९७७

मूल्य : ३.००

मुद्रक :
अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-११००३२

दो शब्द

महर्षि दयानन्द सरस्वती उन्नीसवीं शताब्दी के उच्च-कोटि के योगिराज, महान् सुधारक, आदित्य ब्रह्मचारी, परम वेदज्ञ, अद्वितीय वैय्याकरण, उद्भट विद्वान्, परम दार्शनिक, तार्किक-शिरोमणि, परम आस्तिक, आर्ष परम्परा के पोषक, निर्भीकता की मूर्ति, दया और आनन्द के सागर, साहस और धैर्य के पुतले थे। उसी महापुरुष के जीवन की कुछ झलकियाँ पाठकों को यहाँ मिलेंगी।

पुस्तक में न तो मौलिकता है और न लेखक उसका दावा ही करता है। हाँ इतना अवश्य है कि इस पुस्तक के स्वाध्याय से पाठकों की ज्ञानवृद्धि निश्चित ही होगी। इसमें कुछ ऐसे प्रसङ्गों का भी समावेश कर दिया गया है जो अब तक के जीवन-चरित्रों में नहीं आये हैं।

इस पुस्तक को लिखने में बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय और श्री स्वामी सत्यानन्द जी के ग्रन्थों से विशेष सहायता ली गई है। इनके अतिरिक्त भी अनेक पत्र और पत्रिकाओं का अवलम्बन लिया गया है। तदर्थ मैं सभी का हार्दिक आभारी हूँ।

वेद सदन
८ ई, कमला नगर
दिल्ली-११०००७

—**जगदीश्वरानन्द**

विषय-सूची

॥ ओ३म् ॥

दिव्य दयानन्द

हमने देखा तो नहीं परन्तु पुस्तकों में पढ़ा है और वृद्धों एवं विद्वानों के मुख से सुना है कि एक हीरा होता है जिसमें चारों ओर कोणें निकली होती हैं। आंग्ल भाषा में इसे Diamond cut कहते हैं। इस प्रकार के हीरे की जिस भी कोण अथवा अनीक को देखें वही देदीप्यमान, कान्तियुक्त एवं चमकदार दिखाई देती है। ठीक यही बात महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन उस हीरे के समान है जो हर ओर से चमकता है। उनके जीवन के जिस पहलू पर दृष्टिपात करें वही जाज्वल्य-मान और चमकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यहाँ हम महर्षि दयानन्द के जीवन के कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे।

योगिराज दयानन्द

महर्षि दयानन्द को समझने में लोगों ने भारी भूल की है। बहुत-से व्यक्तियों को यह भ्रम है कि ऋषि दयानन्द केवल एक समाज-सुधारक थे। उन्होंने समाज में फैली रूढ़ियों और पाखण्डों का खण्डन किया और बस। परन्तु वस्तुतः देखा जाये तो समाज-सुधार तो स्वामी जी के कार्य का एक अङ्गमात्र था। उनका जीवन तो सर्वतोमुखी था। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक, शैक्षणिक और नैतिक सभी क्षेत्रों में काम किया। वे आप्त पुरुष थे, तत्त्वदर्शी एवं परोक्षदर्शी थे। वे आध्यात्मिक विद्या के धनी और उच्चकोटि के योगी थे। अपने लगभग २० वर्ष के अल्प प्रचार-काल में

उन्होंने जो महान् कार्य किया वह उन्हीं के शब्दों में बिना योग-बल के असम्भव था। महर्षि का आरम्भिक जीवन योगमय जीवन था। अतः सबसे पूर्व उसी के सम्बन्ध में कथन करते हैं।

चौदह वर्ष की अवस्था में शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर चढ़े नैवेद्य को खाते हुए चूहे को देखकर ऋषिवर के हृदय में सच्चे शिव को प्राप्त करने की लालसा जागी और अपनी बहन तथा प्रिय चचा की मृत्यु देखकर मृत्युञ्जय बनने की इच्छा बलवती हुई। शिव-प्राप्ति और मृत्युञ्जय बनने का मार्ग उन्हें योगाभ्यास बतलाया गया। अपनी साध को सिद्ध करने के लिए २१ वर्ष की अवस्था में वे अपने धन-धान्य से भरपूर परिवार को, माता-पिता के प्यार और दुलार को तथा बन्धु-बान्धवों और मित्रों के स्नेह को छोड़कर घर से निकल पड़े और चल दिये योगियों की खोज में। जहाँ कहीं किसी सिद्ध अथवा योगी के सम्बन्ध में सुनते वहीं जा पहुँचते। उन्होंने अनेक कुटियों, आश्रमों और मठों का चक्कर लगाया, अनेक महात्माओं का सत्संग किया, परन्तु तृप्ति नहीं हुई। फिर भी वे निराश और हताश नहीं हुए। होते भी क्यों !

गिरे सौ बार भी बिजली अगर किशते तमन्ना पर।
जो हिम्मतदार हैं मायूस कब होते हैं हासिल से॥

उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रक्खा। अन्ततः खोजते-खोजते चाणोद कर्नाली में स्वामी जी महाराज को श्री ज्वालानन्द पुरी और श्री शिवानन्द गिरी के दर्शन हुए। उन्होंने स्वामी जी को आत्मज्ञान-पिपासु जानकर अपने साथ अभ्यास कराया। कुछ समय पश्चात् ये दोनों योगी अहमदाबाद चले गये और स्वामी जी को आदेश दे गये कि एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में आने पर हम तुम्हें योग-विद्या के रहस्य और चरम प्रणाली के विषय में शिक्षा देंगे। योग-जिज्ञासु दयानन्द

एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में जा पहुँचे। उन्होंने भी स्वामी जी को सुपात्र जानकर उन्हें योग के भेद और रहस्य बताकर योग के अमूल्य रत्नों से मालामाल कर दिया। इस विषय में स्वामी जी अपने स्वलिखित जीवन-चरित्र में लिखते हैं—

"वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया। उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से मुझे क्रिया-सहित सम्पूर्ण योग-विद्या भलीभाँति विदित हो गई, इसलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। वास्तव में उन्होंने मुझपर एक महान् उपकार किया।"

महर्षि यहीं तक सीमित नहीं रहे। जब उन्हें पता लगा कि जो कुछ शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है उससे भी उच्चतर योग-विद्या को जाननेवाले योगी विद्यमान हैं तो उन्होंने और भी अनेक स्थानों पर घूम-घूमकर योगविद्या के रहस्य हस्तगत किये। परन्तु पूर्ण योगी बनकर भी उन्होंने अपने को छिपाये रक्खा क्योंकि सिद्धियों के चक्कर में पड़कर वे अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहते थे। एक बार 'पायोनियर' के सम्पादक सिनट ने स्वामी जी से योग के चमत्कार दिखाने के लिए कहा था, उसी का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवस्तिकी को एक पत्र में लिखा था—

"जो मैंने सिनट साहब से कहा था वह ठीक है। क्योंकि मैं इन तमाशे की बातों को देखना-दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों। क्योंकि योग के किये-कराए बिना किसी को भी योग का महत्त्व वा इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन् सन्देह और आश्चर्य में पड़कर उसी तमाशे दिखलानेवाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं और उसके साधन करना स्वीकार

नहीं करते। जैसे सिनट साहेब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूँ, चाहे वे राजी रहें चाहे नाराज हों क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊँ तो सब मूर्ख और पण्डित मुझसे यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग के आश्चर्य काम दिखलाइये, जैसा उसको आपने दिखलाया। ऐसी संसार की तमाशे की लीला मेरे साथ लग जाती जैसी मैडम एच० पी० ब्लेवस्तिकी के पीछे लगी है। अब जो इनकी विद्या धर्मात्मता की बातें हैं कि जिससे मनुष्यों की आत्मा पवित्र हो, आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं उनका पूछना और ग्रहण करने से दूर रहते हैं। किन्तु जो कोई आता है मैडम साहेब आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्त नहीं करता न कराता हूँ। **किन्तु कोई चाहे तो योग-रीति सिखला सकता हूँ कि जिससे वह स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों को देख लेवे।"**

(महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन)

योगदर्शन का तीसरा पाद विभूति पाद है। इस पाद में योग के ऐश्वर्यों—योग से होनेवाली सिद्धियों का वर्णन है। बहुत-से लोग समझते हैं कि यह सब गप्प है, परन्तु महर्षि दयानन्द इन सिद्धियों को गप्प नहीं समझते; यह उनके उपर्युक्त कथन से स्पष्ट सिद्ध है। इस विषय में स्वामी जी के जीवन की एक अन्य घटना भी अवलोकनीय है—

एक बार एक व्यक्ति ने स्वामी जी से पूछा—"भगवन्! पातञ्जल शास्त्र का विभूति पाद क्या सच्चा है?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"आप यों ही सन्देह करते हैं। योगशास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराण की-सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभवसिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओं में उत्तीर्ण होने के लिए आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मास तक मेरे पास

निवास करें और मेरे अनुकूल योग-क्रियाएँ साधें, तो आप इस शास्त्र की सिद्धियों का साक्षात् स्वयं कर लेंगे।"

स्वामी जी को अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। स्वामी जी अपनी योग-शक्ति के द्वारा दूसरों के मनोगत भावों को जान लिया करते थे।

एक बार एक सज्जन ने स्वामी जी से प्रार्थना की—"महाराज! अभ्यास में मन लगाने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु मन टिकता ही नहीं, संकल्प-विकल्प शान्त ही नहीं होते।"

स्वामी जी ने व्यङ्ग करते हुए कहा—"मन नहीं टिकता तो भङ्ग भवानी का एक लोटा और चढ़ा लिया करो।"

यह उत्तर सुन उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि स्वामी जी को उसके भंग पीने की बात का पता नहीं था।

उदयपुर-वास के दिनों में ऋषिवर बहुत प्रातः नौलखा उद्यान वाले सरोवर के किनारे-किनारे गोवर्द्धन पर्वत की ओर जाया करते थे। एक दिन उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द जी ने देखा कि महाराज जल पर पद्मासन लगाये, योगमुद्रा में कमल-दल की भाँति विराजमान थे।

आगरा-निवास के समय स्वामी जी दोनों समय योगारूढ़ हुआ करते थे। किसी-किसी दिन पहरों अचलभाव से ध्यानावस्थित रहते। लोगों ने उनको १८-१८ घण्टे की समाधि लगाते देखा था।

जब महाराज प्रयाग पधारे तो भगवान्दास नामक एक व्यक्ति को महाराज की योगक्रिया देखने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। एक दिन उसने छिपकर देखा कि महाराज भूमि से छः इंच ऊपर शून्य में स्थित थे।

एक अन्य पत्र में महाराज ने मैडम ब्लेवस्तिकी को लिखा था—

"आत्मा मनुष्य-शरीर में अद्‌भुत कार्य कर सकती है। संसार में (ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त) सभी पदार्थों के स्वरूप और गुणों को जानकर मनुष्य अत्यन्त दूर के पदार्थों का दर्शन, श्रवण आदि की शक्ति प्राप्त कर सकता है, जिसे प्राप्त करने में प्रायः असमर्थ रहता है।"

(पत्र और विज्ञापन)

एक नवाब ने महाराज से पूछा—"क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे यहाँ बैठा मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"योगी लोग इच्छा नहीं करते। सबमें गुप्त ब्रह्म-विद्या है, योगी का उसी को जानने का उद्देश्य है। अतः यदि योगी चाहे तो योग-विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।"

ऋषिवर को यह सिद्धि भी प्राप्त थी। उदयपुर की घटना है। एक दिन श्री राणा सज्जनसिंह जी और सहजानन्द जी आदि सज्जन स्वामी जी के पास बैठे थे। स्वामी जी ने राणा जी से कहा, "पण्डित सुन्दरलाल जी यहाँ आ रहे हैं। यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए यान का उचित प्रबन्ध कर दिया जाता।" राणा जी ने कहा—"भगवन्! यान तो अब भी भेजा जा सकता है।" इसपर स्वामी जी ने कहा, "अब तो बैलगाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल शुक्लवर्ण है और दूसरे के तन पर लाल धवल धब्बे हैं। वे कल यहाँ पहुँच जाएँगे।" महाराज का कहना अगले दिन बिल्कुल ठीक सिद्ध हुआ।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में योग के बहुमूल्य रत्न बिखरे हुए हैं। पाठकों की ज्ञानवृद्धि और लाभार्थ कुछ यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

"जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमा आदि सिद्धि उत्पन्न होती है। उसके पीछे कहीं से न रुकनेवाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है अन्यथा नहीं। (यजुर्वेद भाष्य १७।६७ का भावार्थ)

"जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप, संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिए।"

(यजुर्वेद १७।७१ का भावार्थ)

"जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करनेवाले विद्वान् का संग और प्रीति से सम्वाद करते हैं वे सबके अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं।"

(यजुर्वेद १७।७३ का भावार्थ)

प्राणायाम का वर्णन करके उसके लाभों का वर्णन करते हुए ऋषिवर लिखते हैं—

"बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।"

(सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

उपासना पद्धति पर प्रकाश डालते हुए योगिराज दयानन्द लिखते हैं—

"जब-जब मनुष्य लोग उपासना करना चाहें, तब-तब इच्छा के अनुकूल एकान्त देश में बैठकर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्यायकारी परमात्मा में नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति,

प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली-भाँति उसमें लगा दें।"

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना विषय)

"जब आसन दृढ़ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है, और न सर्दी-गर्मी अधिक बाधा करती है।"

(वही)

ईश्वर के दर्शन कहाँ होते हैं इस तथ्य का सुन्दर निरूपण भी स्वामी जी के शब्दों में पढ़िये—

"कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में, और उदर के ऊपर जो हृदय-देश है उसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश एक स्थान है, और उसी के बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई स्थान वा मार्ग नहीं है।" (वही)

इस प्रकार के सैकड़ों उद्धरण दिये जा सकते हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं हो सकता। हम अपने अन्य प्रकाशन "योगिराज दयानन्द" में इनका विशद विवेचन करेंगे।

□

वेदज्ञ दयानन्द

जिस प्रकार 'धनुर्धारी' कहा और मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सम्पूर्ण जीवन हमारे नेत्रों के सामने नृत्य करने लगता है, 'चक्रधारी' शब्द के साथ आनन्दकन्द योगेश्वर कृष्णचन्द्र का जीवन मानस-पटल पर अंकित हो जाता है, 'कलंगी वाला' कहते ही गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन का नक्शा सामने आ जाता है, ठीक इसी प्रकार 'वेदों वाला' कहते ही ऋषि दयानन्द का जीवन सम्मुख उपस्थित हो जाता है। महर्षि दयानन्द का काम वेद, महर्षि का सन्देश वेद, महर्षि का जीवन वेद और ऋषि की मृत्यु भी वेद के ही कारण हुई। वेद उनके हृदय में थे, मस्तिष्क में थे और जिह्वा पर थे। वे वेद के लिए जिये और वेद के लिए मरे।

जिस समय महर्षि दयानन्द रंगमंच पर आये उस समय लोग तुलसीकृत रामायण, गीता और भागवत पुराण से आगे नहीं बढ़ते थे। वेद जो आर्यों का परमधर्म है यहाँ से लुप्त हो चुका था। इस प्रसंग में एक घटना का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा।

स्वामी जी महाराज अपने मधुर उपदेशों से शाहजहाँपुर की जनता को मुग्ध और कृतार्थ कर रहे थे। एक दिन लक्ष्मण शास्त्री जी स्वामी जी के पास आकर उनसे शास्त्रार्थ करने लगे। शास्त्रार्थ का विषय था 'मूर्तिपूजा'। स्वामी जी ने शास्त्री जी से कहा, "आप अपने पक्ष की पुष्टि में कोई वेद का प्रमाण दीजिये।"

यह सुनकर शास्त्री जी ने कहा, "वेद कहाँ है जिसका प्रमाण दूँ? वेद को तो शंखासुर चुराकर पाताल ले गया।"

स्वामी जी ने उसी समय वेद हाथ में उठाकर कहा, "पण्डित जी ! आपके आलस्य और प्रमाद-रूपी शंखासुर का वध करके मैंने ये वेद जर्मनी से मँगवाये हैं । लीजिये, इनमें से खोजकर कोई प्रमाण प्रस्तुत कीजिये ।"

इस घटना से पाठकों को भारतीय अवस्था का पता तो लग गया होगा । अब पाश्चात्य विद्वानों के सम्बन्ध में भी सुनिये । पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के विषय में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ फैला रक्खी थीं । वेद के सम्बन्ध में उन्होंने ऐसी अटकलपच्चू कल्पनाएँ की थीं—

"वेद बच्चों की बिलबिलाहट और गडरियों के गीत हैं । इनमें अग्नि, वायु, मित्र, वरुण और इन्द्र आदि देवताओं की पूजा का विधान है । इसी प्रकार विभिन्न देवताओं की स्तुति है । वेद में गाय, घोड़ा, बकरी और यहाँ तक कि पुरुषों की भी बलि देने का वर्णन है । वेद ईसा से तीन-चार सहस्र वर्ष पूर्व बने । वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं है अपितु इनके बनानेवाले भिन्न-भिन्न ऋषि थे जो समय-समय पर इन्हें बनाते रहे । इनमें कर्त्तव्यशास्त्र और आध्यात्मिक शिक्षाओं का नितान्त अभाव है ।"

जब महर्षि दयानन्द कार्यक्षेत्र में आए तो उन्होंने वेदों का सच्चा भाष्य करके वेद के सम्बन्ध में फैली इन सभी भ्रान्तियों को दूर कर वेद का सच्चा स्वरूप लोगों के समक्ष रक्खा । महर्षि के वेद-भाष्य को पढ़कर लोगों के विचार बदले । प्रो० मैक्समूलर ने अपने Biographical Essay में महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य का निर्देश करते हुए लिखा है—

"To Swami Dayananda every thing contained in the Vedas was not only perfect truth but he went one step further and by their interpretation, succeeded in persuading others that every thing is worth-knowing even the most recent inventions of modern science were

alluded to in the Vedas. Steam-engine, electricity, telegraphy and wireless marconigram was shown to have been known in the germs of poets of the Vedas."

अर्थात् महर्षि दयानन्द की दृष्टि में वेद में प्रतिपादित प्रत्येक वस्तु न केवल पूर्ण सत्य थी अपितु वे और एक पग आगे गये और अपनी व्याख्या से वे औरों को यह विश्वास दिलाने में सफल हुए कि प्रत्येक जानने योग्य वस्तु यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञान के आविष्कारों का भी वेद में निर्देश है । रेल, बिजली, तार, बेतार का तार इत्यादि सभी वस्तुएँ कम-से-कम बीज-रूप में वैदिक ऋषियों को ज्ञात थीं ।

कुछ लोगों का विचार है कि स्वामी जी ने कुछ आविष्कारों का नाम सुनकर उन्हें अपने वेद-भाष्य में प्रस्तुत कर दिया, परन्तु यह भ्रम है । इस विषय में श्री अरविन्द घोष के विचार पठनीय और मननीय हैं, अतः उन्हें यहाँ उद्धृत करते हैं—

"Dayananda affirms that the truths of modern physical science are discoverable in the hymns. There is nothing fantastic in Dayananda's idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion. I will even add my own conviction that Veda contains the other truths of science the modern world does not at all possess, and in that case Dayananda has rather under-stated than overstated the depth and range of the Vedic wisdom." **(Dayananda the Man and His Work)**

भाव यह है कि "वेदों में केवल धर्म ही नहीं विज्ञान भी है, दयानन्द के इस विचार में चौंकने की कोई बात नहीं है । मेरा विचार तो यह है कि वेदों में विज्ञान की ऐसी बातें भी हैं जिनका पता आज के वैज्ञानिकों को नहीं चला है । इस दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द ने

वेदों में निहित ज्ञान के विषय में अत्युक्ति नहीं, अपितु अल्पोक्ति से कार्य लिया है।"

महर्षि मनु ने कहा है—'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्।'(मनु०२।६) धर्म का मूल वेद है। ऋषिवर का आरम्भिक नाम मूलशंकर था। अतः उन्होंने जाल-ग्रन्थों को छोड़कर वेद को ही पकड़ा और वेद को ही सत्य विद्याओं का पुस्तक घोषित किया। वेद में एक मन्त्र आता है—

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥
(ऋ० १०।७१।६)

जो व्यक्ति वेदरूप मित्र को छोड़ देता है उसकी वाणी में सार, तत्त्व नहीं रहता। वह जो कुछ सुनता है व्यर्थ ही सुनता है। वह उत्तम कर्म, पुण्य, धर्म के मार्ग को भी ठीक प्रकार से नहीं जान सकता।

महर्षि दयानन्द ने गुरु के आदेश पर तन्त्रादि सभी जाल-ग्रन्थों को यमुना के अर्पित कर दिया और सच्चे मित्र एवं उपकारक वेद को ही पकड़ा। उन्होंने वेद को स्वतःप्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परतःप्रमाण माना। वेद को अपनाने के कारण ही उनकी वाणी में ओज और तेज था और उन्होंने अनेकों को प्रभावित किया।

वेद में एक और मन्त्र आता है—

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्॥ (ऋ० १।३८।१४)

मैं वेदमन्त्रों से अपना मुख भर लूँ और मेघ के समान सर्वत्र उन मन्त्रों की वृष्टि करूँ, स्वयं गाऊँ और दूसरों से गवाऊँ।

इस मन्त्र के अनुसार महर्षि दयानन्द ने स्वयं वेदामृत का पान किया और दूसरों को कराया। वेदों के मन्त्र उनकी

जिह्वा पर नाचते थे। अपने व्याख्यानों में वे वेदमन्त्रों की झड़ी लगा देते थे। उनके वेद-ज्ञान की प्रशंसा करते हुए मैडम ब्लेवस्तिकी ने भी कहा था—He was possessed of the Vedas. अर्थात् दयानन्द पर वेदों का भूत सवार था।

स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् थियासोफिस्ट पत्र ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा था—

"उन्होंने जर्जर हिन्दुत्व के गतिहीन ढूह पर भारी बम्ब-प्रहार किया और अपने भाषणों से लोगों के हृदयों में ऋषियों और वेदों के लिए अपरिमित उत्साह की आग जला दी। सारे भारत में उनके समान हिन्दी और संस्कृत का वक्ता और कोई नहीं था।"

श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास का कहना था कि स्वामी जी ने राजकोट में वेद-विषय पर ऐसा व्याख्यान दिया था कि उच्चता, गम्भीरता और युक्तियुक्तता में, मेरी सम्मति में वह अपूर्व था।

स्वामी जी वेद को ही प्रमुखता देते थे। एक बार मेरठ में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा था, "मैं वेद को ही सर्वोपरि मानता हूँ।"

जब महाराज उदयपुर में थे तो एक दिन राणा जी ने महाराज की सेवा में निवेदन किया कि यदि आप दर्शनों का भाष्य कर दें तो उसके छपवाने के लिए बीस सहस्र रुपया मैं भेंट करने को समुद्यत हूँ। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वेद-भाष्य समाप्त होने पर दर्शनों के विषय में सोचा जायेगा। यह था! ऋषि का वेदप्रेम।

अब एक-दो बातें वेदभाष्य के सम्बन्ध में भी पढ़ लीजिये। अपने वेदभाष्य से महर्षि दयानन्द क्या-क्या आशाएँ रखते थे, यह उन्हीं के शब्दों में पढ़िये—

"परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और

कुशलता से वह दिन देख मिला कि वेदभाष्य सम्पूर्ण हो जावे तो निस्सन्देह इस आर्यावर्त्त देश में सूर्य का-सा प्रकाश हो जावेगा कि जिसके मेटने और झाँपने को किसी का सामर्थ्य न होगा। क्योंकि सत्य का मूल ऐसा नहीं कि जिसको कोई सुगमता से उखाड़ सके। और कभी भानु के समान ग्रहण में भी आ जावे, तो थोड़े ही काल में फिर उग्रह अर्थात् निर्मल हो जावेगा।" (भ्रान्तिनिवारण)

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य पर अपनी सम्मति देते हुए श्री अरविन्द घोष ने लिखा है—

"In the matter of Vedic interpretation I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age-long misunderstanding he was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on that which was essential. He has found the keys of the doors that time has closed and rent asunder the seal of the imprisoned fountains." **(Dayananda the man)**

अर्थात् वेदों का अन्तिम तथा प्रामाणिक भाष्य चाहे कुछ भी हो, दयानन्द का स्थान उपयुक्त शैली के प्रथम आविष्कारक के रूप में सर्वोच्च है। उसने अपनी दिव्यदृष्टि से पुराने अज्ञान तथा भ्रम के मध्य में से सत्य का अन्वेषण किया। जिन वेदों के द्वार को समय ने बन्द कर रक्खा था, उसकी चाबी को उसने पा लिया।

वेद भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो मानवमात्र के कल्याण के लिए प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में दिया था। लोग वेदों को भूल चुके थे। महर्षि ने कहा—

Back to the Vedas! वेदों की ओर लौटो!

गङ्गा का जल शुद्ध, पवित्र और निर्मल होता है परन्तु यदि हुगली पर जाकर देखा जाये तो वहाँ के जल को देखकर घृणा उत्पन्न होती है; उसे पीने को जी नहीं चाहता। यदि गंगा का शुद्ध स्वरूप देखना हो तो हमें हिमालय की ओर जाना होगा। यही बात धर्म के सम्बन्ध में है। स्वामी जी ने सहस्रों ग्रन्थों को पढ़ने और विचार करने के पश्चात् डिण्डिम घोषणा की कि यदि धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हो तो वेदों की ओर चलो, वेद ही धर्म का आदि स्रोत है।

मनु जी महाराज ने कहा है—

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। (मनु० २।१३)

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है। इस निर्देशानुसार स्वामी जी वेद को ही परम प्रणाम मानते थे। महर्षि ने अपने प्रत्येक सिद्धान्त की पुष्टि के लिए वेदमन्त्र उपस्थित किये हैं। यहाँ दिग्दर्शनार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

जिज्ञासु—वेद ईश्वरीय ज्ञान है इसमें क्या प्रमाण है?

महर्षि—यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का सातवाँ मन्त्र

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

अर्थात् उसी यज्ञरूप परमेश्वर से ऋग्यजुः साम और अथर्ववेद प्रकट हुए।

जिज्ञासु—तीन पदार्थ अनादि हैं इसमें क्या प्रमाण हैं?

महर्षि—ऋग्वेद १।१६४।२० देखिये—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

अर्थात् दो मित्र एक वृक्ष पर एक-दूसरे को आलिंगन किये हुए बैठे हैं। उनमें से एक तो उस वृक्ष के फलों को खाता है परन्तु दूसरा साक्षी होकर देखता है।

जिज्ञासु—ईश्वर एक है इसमें क्या प्रमाण है ?

महर्षि—अथर्ववेद के निम्न मन्त्र देखिये—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।।
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक ऐव ।।
(अथर्व० ११।४।१५-१८)

अर्थात् ईश्वर न दूसरा है न तीसरा, न चौथा, न पाँचवाँ, न छठा, न सातवाँ, न आठवाँ, न नववाँ और न दसवाँ । वह सदा एक अद्वितीय है । उससे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं ।

जिज्ञासु—मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिए इसमें क्या प्रमाण है ?

महर्षि—यजुर्वेद के बत्तीसवें अध्याय का तीसरा मन्त्र—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।

जिसका नाम महान् यश वाला है उसकी कोई मूर्ति नहीं है ।

जिज्ञासु—ईश्वर अवतार नहीं लेता इसमें क्या प्रमाण है ?

महर्षि—ऋ० ७ । ३५ । १३ में ईश्वर को 'अज' अजन्मा कहा गया है और यजुर्वेद ८।४० में उसे 'अकायम्'—शरीर-रहित कहा गया है । जो अजन्मा और शरीररहित है उसका अवतार कैसा ?

जिज्ञासु—मृतक शरीर का क्रियाकर्म किस प्रकार किया जाना चाहिए ?

महर्षि—भस्मान्तं शरीरम् । यजुर्वेद ४०।१५ के अनुसार जलाना ही ठीक है ।

इन उद्धरणों से प्रकट है कि ऋषि कैसे वेदज्ञ थे और कितने वेदप्रेमी । प्रो० मैक्समूलर ने उनकी प्रशंसा करते हुए ठीक ही लिखा है—

"स्वामी दयानन्द एक महान् विद्वान् थे । उनके धर्म-नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर आधारित थी । उन्हें वेद कण्ठस्थ थे । उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था । वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान्, साहित्य का पुतला, वेदों के महत्त्व को समझनेवाला, अत्यन्त प्रबल नैयायिक और विचारक यदि भारतवर्ष में हुआ है, तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती ही था ।"

ऋषिवर ने वेद पर कैसा अद्भुत परिश्रम किया था, इस तथ्य का दिग्दर्शन कराके हम इस विषय को विराम देंगे ।

जब महाराज लखनऊ में थे तब पण्डित प्रभुदयाल जी से वार्तालाप करते हुए उन्होंने कहा था, "मैंने वेदों के एक-एक मन्त्र को भली-भाँति विचार-दृष्टि से जाँच लिया है । उनमें ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है, जो अयुक्त सिद्ध हो सके । जैसे सराफ रुपयों को परखकर थैली में रख लेता है और फिर उनकी निर्दोषता में निर्भ्रान्त हो जाता है, ऐसे ही एक-एक वेदमन्त्र को युक्ति और प्रमाण की कसौटी पर कसकर उनकी सत्यता में मैं निस्सन्देह हो गया हूँ ।"

इतने गम्भीर अध्ययन, चिन्तन और मनन के पश्चात् ही ऋषि ने वेद को सत्यविद्याओं का पुस्तक कहा था । स्वामी भगवदाचार्य जी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है—

"यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो जगत् में सर्वप्रथम विद्वान् स्वामी दयानन्द ही हैं जिन्होंने यह घोषित किया कि "वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है ।" मैं इस कथन के साथ सर्वथा सहमत हूँ ।" (साम संस्कार भाष्य की प्रस्तावना, पृष्ठ १३)

□

ब्रह्मचारी दयानन्द

भर्तृहरि जी ने एक स्थान पर लिखा है—

मत्तेभिकुम्भ दलने भुवि सन्ति शूराः,
केचित्प्रचण्ड मृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः॥

(शृङ्गारशतक, ५८)

मत्त मजराज के मस्तक को फाड़नेवाले और प्रचण्ड सिंह को मारनेवाले वीर तो संसार में बहुत मिल जाएँगे, परन्तु कामदेव के घमण्ड को खण्डित करनेवाला कोई विरला ही मनुष्य होगा। ऋषि के जीवन के आलोक से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी उन विरले मनुष्यों में से ही थे। शंकर की भाँति मूलशंकर ने भी कामदेव को भस्म कर दिया था।

यदि हम इतिहास के पृष्ठों को उलटें तो ब्रह्मचारी तो और भी मिलेंगे, परन्तु महर्षि दयानन्द अद्भुत और निराले ब्रह्मचारी थे। आइये कुछ ब्रह्मचारियों के जीवनों का अवलोकन करें—

इस धरा-धाम पर महावीर हनुमान् का नाम किसने न सुना होगा! आप जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। अपने ब्रह्मचर्य के बल पर आपने कैसे भयंकर एवं अद्भुत कर्म किये थे यह सर्वविदित ही है। परन्तु हनुमान् जी ब्रह्मचारी क्यों रहे? लोकोपकार के लिए? नहीं, अपने स्वामी राम को रिझाने के लिए।

परशुराम भी ब्रह्मचारी थे परन्तु आपने अपने ब्रह्मचर्य का उपयोग किस प्रकार किया? २१ बार क्षत्रियों का संहार करके।

भीष्म पितामह भी ब्रह्मचारी थे। परन्तु आपने ब्रह्मचर्य-धारण किसलिए किया? संसार के उपकार और उद्धार के लिए नहीं, अपितु पिता की तुच्छ कामना को पूर्ण करने के लिए। निस्सन्देह बहुत बड़ा त्याग और बलिदान था, परन्तु यह ब्रह्मचर्य उनकी विवशता था।

शंकराचार्य भी ब्रह्मचारी थे परन्तु जब आप मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी के सामने निरुत्तर हो गये तो एक मास की अवधि लेकर आपने एक राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर गृहस्थ का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया था, ऐसा उनका इतिहास बतलाता है। प्रत्यक्ष में न सही परोक्ष में ही सही, अखण्ड ब्रह्मचर्य तो न रहा।

अब तनिक महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य को भी देखिये। महर्षि दयानन्द माता-पिता अथवा किसी स्वामी को प्रसन्न करने और रिझाने के लिए ब्रह्मचारी नहीं बने। संसार का संहार करने के लिए भी उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण नहीं किया था। उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण किया था मृत्युञ्जय बनने के लिए, सच्चे शिव के दर्शन करने के लिए, संसार से कुरीतियों और पाखण्ड का खण्डन करने के लिए, समस्त संसार में वैदिक सभ्यता और संस्कृति का नाद बजाने के लिए, संसार का उपकार और उद्धार करने के लिए। हुए न अद्भुत ब्रह्मचारी!

लीजिये महर्षि के विमल ब्रह्मचर्य की कुछ घटनाओं का रसामृतपान कीजिये—

एक बार महर्षि कुछ व्यक्तियों के साथ एक शिवालय के पास से निकल रहे थे। चलते-चलते उन्होंने अपना सिर झुका

दिया। किसी ने कहा—"हमारी मूर्तियों में कितनी शक्ति है, दयानन्द-से नास्तिक का सिर स्वयं झुका दिया।" ऋषि ने एक नग्न बाला की ओर संकेत करते हुए कहा, "देखते नहीं यह मातृशक्ति है। मैंने इसी के लिये सिर झुकाया है।" कैसा पावन विचार ! एक बालिका में भी मातृशक्ति की भावना !

जब महर्षि दयानन्द बंगाल में प्रचारार्थ पधारे तो प्रसिद्ध साधक श्री अश्विनीकुमार दत्त जी भी उनके सत्संग में जाया करते थे। एक दिन दत्त महाशय ने एकान्त पाकर स्वामी जी से प्रश्न किया, "क्या आपको काम ने कभी नहीं सताया ?" ऋषि ने आँखें बन्द करके ध्यानमग्न हो २-३ मिनट में अपने सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि दौड़ाकर कहा, "जहाँ तक मैं स्मृति दौड़ाता हूँ, मुझे मेरे जीवन में ऐसा अवसर स्मरण नहीं पड़ता।" इस उत्तर को सुनकर उत्तेजित हो दत्त महाशय ने कहा, "क्या आप हाड़-मांस के बने हुए नहीं हैं ?" ऋषिवर ने इसका जो उत्तर दिया, ब्रह्मचर्य-पालन के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को उसे हृदय में धारण कर लेना चाहिए। उन्होंने कहा, "अश्विनी कुमार जी ! अवकाश ही नहीं है।" अश्विनी-कुमार जी इसपर सन्तुष्ट होकर चले गये।

सचमुच ऋषि दयानन्द के ऊपर इतना कार्य-भार था कि उन्हें उस सम्बन्ध में सोचने और विचारने का अवसर ही नहीं मिलता था। साधु टी० एल० वास्वानी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है : He was married to his mission. अर्थात् वे अपने मिशन के साथ विवाहित थे।

हरिद्वार में एक अवधूत मथुराप्रसाद जी नामक उच्च-कोटि के योगी हुए हैं। सवा सौ वर्ष से अधिक आयु पाकर सन् १६१८ में उन्होंने शरीर-त्याग किया था। उनसे किसी ने ऋषि के ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, "दयानन्द बहुत वीर था। इस प्रकार का अखण्ड ब्रह्मचारी

पुस्तकों में सुनने में आता है, देखने में विरला मिलता है। दयानन्द पुस्तकों में वर्णित ब्रह्मचारी थे।"

गांधी जी ने महर्षि के सम्बन्ध में एक बार अपने एक लेख में लिखा था—I envy his Brahmacharya but at once a despair. अर्थात् मुझे महर्षि के ब्रह्मचर्य से डाह (ईर्ष्या) होता है परन्तु जब मैं उन-जैसे ब्रह्मचारी बनने की बात सोचता हूँ तो एकदम निराश हो जाता हूँ।

बाबू देवेन्द्रनाथ ने लिखा है, "मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जयकिशन दास ने हमसे कहा था कि जिस ज़ोर, जिस आग्रह और जिस उत्साह के साथ स्वामी जी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता प्रतिपादित करते थे, उस प्रकार से इस विषय पर बोलते हुए हमने किसी को नहीं सुना। वह सबसे अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे।"

स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और महत्त्व पर बल देते हुए लिखा है—

"जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधारों का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने-वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रखाके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें। (संस्कारविधि, गर्भाधान प्रकरण)

ऋषिवर ब्रह्मचर्य को ही देश के उद्धार और पतन का कारण मानते थे। सन् १८८१ में लॉर्ड रिपन ने चित्तौड़ में एक दरबार का आयोजन किया था। इसमें सारे राजस्थान से राजा-महाराजा एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर महर्षि को भी आमन्त्रित किया गया था और वे उदयपुर के अतिथि थे।

वहाँ राणा संग्रामसिंह और महाराणा प्रताप जैसे क्षत्रिय वीरों की सन्तानों को मांस, मदिरा तथा विषय-वासनाओं में फँसे देख महर्षि की अन्तर्वेदना आँखों में अश्रुधारा और जिह्वा पर इन शब्दों में फूट पड़ी थी—

"ब्रह्मचर्य का नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ है और ब्रह्मचर्य का उद्धार होने से ही फिर देश का उद्धार होगा।"

बच्चों में आरम्भ से ही ब्रह्मचर्य-पालन और रक्षण के संस्कार डालने के लिए महर्षि सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

"देखो! जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त-सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

(द्वितीय समुल्लास)

स्वामी जी के ग्रन्थ ब्रह्मचर्य की गरिमा से भरे पड़े हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ अधिक उल्लेख नहीं हो सकता। ऋषिवर स्वयं अखण्ड ब्रह्मचारी थे। उनके ब्रह्मचर्य की गरिमा पढ़िये—

शाहपुराधीश सर नाहरसिंह जी ने महर्षि के सत्सङ्ग का आनन्द खूब लूटा था। ब्रह्मचर्य के कारण महर्षि के सद्गुणों

का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

"स्वामी जी पुष्टकाय, दृढ़ जत्रु (हँसली) और बड़े बलिष्ठ थे। उनके शरीर की इस समय के बलवानों से जब तुलना करता हूँ तो बड़ा भारी अन्तर पाता हूँ। उनके अंग-प्रत्यंग ऐसे सुदृढ़ और सुडौल थे कि वैसे आज तक देखने में नहीं आये। वे नित्यप्रति प्रातःकाल योग-साधन के लिए जंगल में जाते और प्राणायाम की क्रियाएँ करते थे। एक दिन मैं भी उनके साथ गया तो उन्होंने कुछ प्राणायाम की विधि जो वे मुझे नित्यप्रति सिखाया करते थे सिखाकर विदा करना चाहा, किन्तु मेरी इच्छा उनके पास रहने की हुई; परन्तु स्वामी जी जंगल में दौड़ लगाते थे इसलिए उन्होंने मुझको कहा कि तुम इतना परिश्रम न कर सकोगे; परन्तु मैं नहीं माना और मैं भी उनके साथ दौड़ने लगा तो थोड़ी देर बाद थक गया और स्वामी जी बराबर दौड़ते चले गये। शायद पाँच मील से कम की दौड़ न लगाई होगी और लौट आने पर भी फेफड़े न फले थे। मैंने उस दिन से यह बात समझ ली कि स्वामी जी के पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही यह फल है।"

श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए० उनके ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए लिखती हैं—

"नैपोलियन और सिकन्दर जैसे राजा और महाराजा तो संसार में बहुत उत्पन्न हुए हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जी महाराज इन सबसे बढ़कर शक्तिशाली और विजेता हुए हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्मचर्य का अद्वितीय पालन किया—

बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से-अम्मारः को गर मारा।
नहंग -ो- अज़दहा-ओ-शेरे-नर मारा तो क्या मारा॥

और एक सच्चे योगी का जीवन व्यतीत किया।"

विद्वच्चक्रचूड़ामणि गुरु विरजानन्द जी ने शतशः

विद्यार्थियों को विद्या-दान दिया और अनेकों को पण्डित बनाया। विद्वत्ता की दृष्टि से श्री गोस्वामी उदयप्रकाश जी द्वितीय शिष्य थे। श्री पण्डित उदयप्रकाश जी के दो पुत्र थे (१) श्री पण्डित नन्दकिशोर जी और (२) श्री पंडित मुकुन्ददेव जी। मुकुन्ददेव जी ने गुरु विरजानन्द जी की एक जीवनी लिखी थी। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—

"हमारा स्वामी दयानन्द जी से कुछ सम्बन्ध नहीं। न हम दयानन्द स्वामी के मतानुयायी, न आर्य भाई।...स्वामी दयानन्द जी में साहस, गाम्भीर्य आदि गुण तो थे ही परन्तु ब्रह्मचर्य-गुण अद्वितीय एवं लोकोत्तर था जिस एक गुण का होना भी आजकल असम्भव है।"

मथुरा-अवस्थिति के समय महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए स्वामी सत्यानन्द जी लिखते हैं—

"वे बाज़ारों में चलते, गलियों में जाते और घाट से बार-बार पानी लाते थे। इन स्थानों में सैकड़ों स्त्रियाँ इधर-उधर आती-जाती थीं, परन्तु ढाई वर्ष में कभी किसी ने उन्हें किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर देखते नहीं देखा। वे सदा नीची मार्ग-विलोकिनी दृष्टि रखकर चला करते थे। उनकी इस वृत्ति की सारी मथुरा में धाक थी। मन्दिरों में, घाटों पर, विश्रान्तों में, पाठशालाओं में, बाज़ारों में, हाटों पर, गृहों में, चौबों के अखाड़ों में और विजयापान की मण्डलियों में—सर्वत्र श्री दयानन्द की सुशीलता और अभंग ब्रह्मचर्य-व्रत का गुण-गान किया जाता था।"

ऋषि का यह गुण ऐसा था कि विरोधियों ने भी इसकी प्रशंसा की है। यहाँ इस सम्बन्ध में उनके जीवन की एक घटना प्रसिद्ध पौराणिक पत्र 'परमार्थ' के ब्रह्मचर्याङ्क से उद्धृत की जाती है—

"आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द अपने प्रचारकाल

में एक बार लाहौर में ब्रह्मचर्य की महिमा का उपदेश कर रहे थे। ब्रह्मचर्य की आश्चर्यजनक शक्ति का प्रभाव सुनकर वहाँ के एक सुप्रसिद्ध बैरिस्टर ने कहा, स्वामी जी ! ये सब पुरानी कहानियाँ तो हमने बहुत-सी सुनी हैं। मैंने सुना है कि आप भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं। आप ही कुछ करामात दिखाइये। भरी सभा में ऐसी बात एक सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित व्यक्ति के मुख से सुनकर स्वामी दयानन्द जी मौन हो गये। उन्हें मौन देखकर श्रोताओं को एक प्रकार की गम्भीर निराशा का अनुभव हुआ। सभा का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के पश्चात् जब वे बैरिस्टर महोदय अपनी चार घोड़ों से जुती बग्घी पर बैठकर जाने लगे तो स्वामी जी ने दौड़कर पीछे से उस गाड़ी को बलपूर्वक पकड़ लिया। सहस्रों नर-नारियों ने देखा कि ऊपर कोच पर स्थित साईस बारम्बार घोड़ों पर कोड़े फटकार रहा है किन्तु घोड़े अपनी स्थान पर ही पैर पटक रहे हैं। यथाशक्ति ज़ोर लगाने पर भी आगे एक इंच भी नहीं बढ़ रहे हैं। जो जनता स्वामी जी के प्रति नैराश्य का अनुभव करने लगी थी, वह इस अपूर्व पराक्रम को देखकर मुक्तकण्ठ से स्वामी जी का जयघोष करने लगी। आश्चर्य से गाड़ी में बैठे हुए बैरिस्टर साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो अपने कहे हुए प्रश्न का ऐसा क्रियात्मक उत्तर पाकर गाड़ी से कूदकर भावावेश में श्री स्वामी जी के चरणों से लिपट गये और अपने अपराध की क्षमा-याचना कराने लगे। स्वामी जी ने कहा, 'भैया ! यह शक्ति तो केवल मेरी निजी ब्रह्मचर्य-रक्षा की है। यदि मेरे माता-पिता और उनसे पहले की पीढ़ियों ने शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया होता तो इससे भी अधिक चमत्कार आप देख सकते थे।'

स्वामी दयानन्द के जीवन की इस घटना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यदि इस ओर ध्यान दिया जाये तो

आज असम्भव जान पड़नेवाली बातें भी सम्भव हो सकती हैं।"

महर्षि दयानन्द ने वेद के इस मन्त्र को अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिखाया—

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ (अथर्व० ११।५।२६)

अर्थात् ब्रह्मचारी प्राण, अपान, व्यान, मेधा, यश, वीर्य आदि को धारण करता हुआ समुद्र के जल के ऊपर तपते हुए सूर्य के समान तप करता है। विद्या और व्रत में निष्णात होकर ब्रह्मचारी अपने अपूर्व तपोबल और आश्चर्यजनक कृत्यों से संसार को चकित कर डालता है और संसार में सर्वत्र सुशोभित होता है।

अपने ब्रह्मचर्य-बल से ही उन्होंने मृत्यु को भी पराभूत और परास्त किया। मृत्यु आती थी परन्तु ब्रह्मचारी दयानन्द ठोकर मारकर उसे परे हटाते थे। उन्होंने वेद की इस शिक्षा को भी सिद्ध कर दिखाया।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। (अथर्व० ११।५।१९)

ब्रह्मचर्य-रूपी तप से देव मृत्यु को मार भगाते हैं।

महर्षि दयानन्द के अखण्ड ब्रह्मचर्य की गौरव-गरिमा का गान करते हुए श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय 'दयानन्द—ब्रह्मचर्य का पोषक' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं—

"भारत की महिमा का मूल क्या था? **ब्रह्मचर्य**! हिन्दुओं की जिस गरीयसी प्रतिभा को देखकर प्राचीन यूनान और रोम आश्चर्यान्वित हो गये थे उसका हेतु क्या था? **ब्रह्मचर्य**! जो उपनिषदादि अनुपम और उपादेय ग्रन्थमाला के रचयिता थे, वे कौन थे? **ब्रह्मचारी**! रामायण और महाभारत के जिस अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मनुष्य-मण्डली अवाक् रह

जाती है, उसके सृष्टिकर्ता कौन थे? **ब्रह्मचारी**! गम्भीर विचारशीलता और तत्त्वानुसन्धान के अद्भुत क्षेत्र स्वरूप सांख्यमीमांसा की रचना किन्होंने की? **ब्रह्मचारियों ने**। पाणिनि का पुनरुद्धारक, साधनपूर्व भाषानुवादक, साहित्य-विज्ञान के पथ का प्रचारक कौन था? **एक ब्रह्मचारी**! सुतराम् देखा जाता है कि भारत-भूमि का जो कुछ संबल, जो कुछ गौरव, जो कुछ प्रतिष्ठा थी उस सबके मूल में ब्रह्मचर्य ही विद्यमान था। अतः जब तक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान होता रहेगा, तब तक भारत के विलय होने की सम्भावना नहीं हो हो सकती। जब तक ब्रह्मचर्य का अभ्युदय होता रहेगा, तब तक आर्य जाति के लिए निराश होने का कोई कारण नहीं है। यह निश्चित है कि यदि आर्यावर्त्त फिर जागेगा तो ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से जागेगा। यदि इन पददलित, परानुग्रह-जीवी हिन्दुओं का पुनरुत्थान होगा तो ब्रह्मचारियों के द्वारा ही होगा। यदि आर्यों का प्रनष्ट गौरव फिर कभी वापस आकर चमकेगा तो ब्रह्मचर्य की ही महिमा से चमकेगा, क्योंकि बल, वीर्य, मेधा, धारण-शक्ति, नीरोगता और शारीरिक पराक्रम जिस प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर हैं, मनुष्य की आशा, उत्साह, अध्यवसाय, कष्ट, सहिष्णुता, श्रम-शीलता, तितिक्षा और अटल प्रतिज्ञा आदि का संचार और परिपुष्टि भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। जैसे दयानन्द अपने जीवन में निष्कलंक ब्रह्मचर्य का परिचय देकर अपनी विद्या, पाण्डित्य और प्रतिभा आदि के विषय में असाधारणत्व को प्रतिष्ठित कर गये हैं, वैसे ही वह अपने जीवन में ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च आसन पर स्थापित करके इस देश का महान् उपकार कर गये हैं।"

इसी शीर्षक में वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"वह बार-बार कहा करते थे कि यदि इन मृतप्राय

हिन्दुओं को पुनर्जीवित करना है, हृतसर्वस्व आर्यावर्त्त के शिर को एक बार फिर गौरव-मुकुट से मण्डित करना है तो उसका उपाय ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। इसीलिए उन्होंने प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुद्धार के लिए विशेष प्रयत्न किया था और इसीलिए उन्होंने गुरुकुल के स्थापना की व्यवस्था की थी। दयानन्द जैसे स्वयं निष्कलंक ब्रह्मचारी थे और जैसा लाभ ब्रह्मचर्य के द्वारा उन्होंने स्वयं उपलब्ध किया, वैसे ही निष्कलंक ब्रह्मचारी वह अन्य साधारण मनुष्यों को बनाके वैसा ही लाभ उन्हें उपलब्ध कराना चाहते थे। इसी हेतु वे अपने देशवासियों से ब्रह्मचर्य धारण करने का बारम्बार साग्रह अनुरोध करते थे।"

आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रहकर जहाँ उन्होंने अपने जीवन में विलक्षण क्रान्ति की, वहाँ उन्होंने अपने ओजस्वी विचारों से न केवल भारत में अपितु समस्त संसार में एक तहलका मचा दिया। यह उनके ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव था।

□

देशभक्त दयानन्द

महर्षि दयानन्द की देशभक्ति की प्रशंसा करते हुए श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए० लिखती हैं—

"सोते-जगते, चलते-फिरते वे (महर्षि दयानन्द) हर समय और हर प्रकार भारत माता की सेवा में लगे रहे और अन्ततोगत्वा उन्होंने अपना प्यारा जीवन अपने देश के लिए बलिदान कर दिया। यदि स्वामी दयानन्द जी जैसे महर्षि भारतवर्ष में पैदा न होते तो आज हमको महात्मा गांधी जी, महात्मा तिलक जी और लाला लाजपतराय जी जैसे कार्यकर्त्ता और भक्तों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता।"

सचमुच देशभक्ति महर्षि दयानन्द के रग-रग और रोम-रोम में कूट-कूटकर भरी हुई थी। ब्रह्मसमाज और प्रार्थना-समाज की आलोचना करते हुए स्वामी जी महाराज सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं—

"जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थना-समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ-कुछ पाषाणादि मूर्ति-पूजा को हटाया, अन्य जाल-ग्रन्थों के फन्दों से भी कुछ बचाये, इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत-से लिये हैं। खान-पान-विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही इसके बदले पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंग्रेज़ों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्तीय लोग सदा से

मूर्ख चले आए हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।···भला जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न-जल खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना·· बुद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?···देखो! अपने देश के बने हुए जूते को आफिस-कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी कितना मान-प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्य का नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक वे लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे, परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल-चलन नहीं छोड़ा और तुममें से बहुत लोगों ने उनकी नकल कर ली। इससे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं···इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर इसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।"

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

कैसा उत्कट देशप्रेम है! इस उद्धरण में महर्षि का वेद-प्रेम, ऋषि-मुनियों के प्रति भक्ति तो प्रकट होती ही है परन्तु महर्षि की देशभक्ति की चरम सीमा तो यह है कि विदेशियों

द्वारा अपने देश के जूते के लिए तिरस्कार भी टीस बन गई। हो भी क्यों न, थे तो सच्चे देशभक्त!

'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का उद्घोष करनेवाले श्री बालगंगाधर लोकमान्य तिलक जब अभी कार्यक्षेत्र में भी नहीं आये थे और स्वराज्य के लिए प्रयत्न करनेवाली कांग्रेस का जब जन्म भी नहीं हुआ था, उससे बहुत पूर्व महर्षि दयानन्द ने स्वराज्य शब्द का प्रयोग अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में किया था—

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों से पादाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह-रहित, अपने और पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।"

(सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)

महर्षि दयानन्द की प्रबल देशभक्ति का एक और उदाहरण देखिये—

महर्षि दयानन्द ने कलकत्ते में कुछ भाषण दिये थे। कभी-कभी कलकत्ता के एक प्रमुख बिशप सभा की अध्यक्षता करते थे। वे ऋषि दयानन्द के इस्लाम और ईसाइयत के

सम्बन्ध में अगाध ज्ञान को देखकर विस्मित हो जाते थे। उन्हें इस बात का आश्चर्य होता था कि अरबी और अंग्रेज़ी न जानते हुए भी उन धर्मों की इन्हें कितनी जानकारी है।

कलकत्ता के उस पादरी से तत्कालीन वायसराय लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने स्वामी जी की विलक्षण प्रतिभा की बात सुनकर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने उनसे दुभाषिये के द्वारा बातचीत की। इस बातचीत से ऋषि दयानन्द के हृदय की देशभक्तिपूर्ण प्रदीप्त भावना प्रकट होती है। लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने इस बातचीत का विवरण इण्डिया ऑफिस को भेजते हुए लिखा था कि सरकार को इस 'विद्रोही फकीर' पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए। इण्डिया ऑफिस को भेजे गये विवरण के अनुसार यह बातचीत निम्न प्रकार हुई थी—

वायसराय—मुझे बताया गया है कि आप अन्य धर्मों पर जो कटु प्रहार करते हैं उससे हिन्दुओं और मुसलमानों में आपके प्रति विरोधभाव पैदा हो गया है। क्या आपको यह भय है कि आपके विरोधी आपपर कोई आक्रमण करेंगे? विशेष रूप से मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आपको हमारी सरकार की ओर से किसी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता है?

ऋषि दयानन्द—मुझे इस राज्य में अपने विश्वास के अनुसार प्रचार करने की पूरी स्वाधीनता है। मुझे अपने ऊपर किसी के द्वारा आक्रमण का किसी प्रकार का भय नहीं है।

वायसराय—पण्डित दयानन्द! यदि ऐसी बात है तो क्या आप इस देश को ब्रिटिश शासन द्वारा दिये गये शान्ति और सुख के वरदान के सम्बन्ध में अपनी प्रशंसा के कुछ उद्गार प्रकट करेंगे और अपने उपदेशों के साथ की जानेवाली

प्रार्थनाओं के समय भारत पर ब्रिटिश शासन की स्थिरता बने रहने की चर्चा करेंगे?

दयानन्द—मैं किसी भी स्थिति में इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों के विकास के लिए और संसार के राष्ट्रों में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए भारतवर्ष शीघ्र स्वाधीनता प्राप्त करे। मैं प्रतिदिन प्रातः-सायं भगवान् से प्रार्थना करते हुए यह माँगता हूँ कि वह दयालु भगवान् मेरे देश को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त करें।

लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने तो इस स्पष्ट और निर्भीक उत्तर की कल्पना भी नहीं की थी। उसने एकदम बातचीत समाप्त कर दी। इस बातचीत ने वायसराय के हृदय में ऋषि दयानन्द के उद्देश्यों तथा कार्यों के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर दिया। तभी उन्होंने सरकार को इस 'विद्रोही फकीर' से सावधान रहने की सलाह दी थी।

(दैनिक हिन्दुस्तान, १३ मई १८६१)

महर्षि दयानन्द ही स्वदेशी-प्रचार के सबसे पहले पैगम्बर थे। यह बात उनके ग्रन्थों के उद्धरणों से भली-भाँति स्पष्ट है। लीजिये कुछ उद्धरणों का अवलोकन कीजिये—

'इषे पिन्वस्वोर्जे' (यजु०) मन्त्र की व्याख्या में ऋषि लिखते हैं—

"अन्य देशवासी राजा देश में कभी न हो, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।" (आर्याभिविनय)

'ऋजुनीति नो वरुणः' इस ऋग्वेद-मन्त्र की व्याख्या में ऋषि ने लिखा—"आप 'वरुणः' सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो सो हमको वर राज्य, वर विद्या, वर नीति देओ।…हे

कृपासिन्धु भगवन् ! हमपर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ।" (आर्याभिविनय)

"जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता ।"

(सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)

महर्षि दयानन्द से पूर्व भी अनेक सुधारक हुए परन्तु महर्षि की देशभक्ति और राष्ट्रीयता विलक्षण, अद्भुत और निराली थी । महर्षि की मातृभाषा गुजराती थी और संस्कृत के वे धुरन्धर विद्वान् थे, परन्तु उन्होंने अपने सारे ग्रन्थ भारत की भावी राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही लिखे, जिसको उन्होंने अपनी दिव्य-दृष्टि से देखा था । यह है ऋषि की राष्ट्रीयता !

ऋषि दयानन्द को भारत की संस्कृत भाषा से कैसा प्रेम था इस सम्बन्ध में एक रोचक और महत्त्वपूर्ण घटना पढ़िये—

महर्षि के पाण्डित्य, अकाट्य यौक्तिक शक्ति और अद्भुत प्रतिभा का परिचय पाकर एक बार केशवचन्द्र सेन ने कहा, "शोक है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान् अंग्रेज़ी नहीं जानता, अन्यथा इङ्गलैण्ड जाते समय वह मेरा इच्छानुकूल साथी होता ।" स्वामी जी ने भी हँसकर कहा, "शोक है कि ब्राह्म-समाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वे समझते ही नहीं ।"

अब ऋषि की देशभक्ति की कुछ अन्य घटनाओं का रसास्वादन कीजिए और महर्षि की देशभक्ति की दाद दीजिए—

"सोरों की घटना है । एक दिन गंगा-तीर पर एक साधु कमण्डल आदि प्रक्षालन करके वस्त्र धोने में प्रवृत्त था । वह था घुटा हुआ मायावादी । दैव योग से भ्रमण करते हुए स्वामी जी वहाँ जा पहुँचे । उसने स्वामी जी को सम्बोधन करके कहा—'इतने त्यागी परमहंस—अवधूत—होकर आप

खण्डन-मण्डनरूप प्रवृत्ति के जटिल जाल में क्यों उलझ रहे हो ? निर्लेप होकर क्यों नहीं विचरते ?' महाराज मुस्कराकर बोले, 'हम तो यह सब करते हुए भी निर्लेप हैं । अब रही प्रवृत्ति की बात सो शास्त्रीय प्रवृत्ति प्रजा-प्रेम से प्रेरित होकर सब ही को करना उचित है ।'

साधु जी ने कहा, 'प्रजा-प्रेम का नया बखेड़ा क्यों डालते हो ? आत्मा से प्रेम करो, जिसके लिए कि श्रुति पुकार रही है ।' उस समय उसने मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य के सम्वाद के वाक्य भी बोले । तब स्वामी जी ने पूछा, 'महात्मन् ! आप किससे प्रेम करते हैं ?' साधु बोला, 'आत्मा से ।' स्वामी जी ने पूछा, 'वह प्रेममय आत्मा कहाँ है ?' साधु ने कहा, 'वह राजा से लेकर रंकपर्यन्त और हस्ती से लेकर कीट तक सर्वत्र ऊँच-नीच में परिपूर्ण है ।' स्वामी जी बोले, 'जो आत्मा सबमें रमा हुआ है क्या आप सचमुच उससे प्रेम करते हैं ?' साधु ने उत्तर दिया, 'तो क्या हमने मिथ्या वचन बोला है ?' तत्पश्चात् स्वामी जी ने गम्भीरतापूर्वक कहा, 'नहीं, आप उस महानात्मा से प्रेम नहीं करते । आपको अपनी भिक्षा की चिन्ता है, अपने वस्त्र उज्ज्वल बनाने का ध्यान है, अपने भरण-पोषण का विचार है । क्या आपने कभी उन बन्धुओं का भी चिन्तन किया है जो आपके देश में लाखों की संख्या में भूख की चिता पर पड़े हुए रात-दिन, बारहों महीने, भीतर-ही-भीतर जलकर राख हो रहे हैं ? सहस्रों मनुष्य आपके देश में ऐसे हैं जिन्हें आजीवन उदर भरकर खाने को अन्न नहीं जुड़ता । उनके तन पर सड़े-गले, मैले-कुचैले चिथड़े लिपट रहे हैं । लाखों निर्धन दीन ग्रामीण भेड़ों और भैंसों की भाँति गन्दे कीचड़ और कूड़े के ढेरों से घिरे हुए सड़े-गले झोंपड़ों में लोटते हुए जीवन के दिन काट रहे हैं । ऐसे कितने ही दीन दुखिया भारतवासी हैं, जिनकी सार-सम्भार कोई

भूले-भटके भी नहीं लेता। बहुतेरे कुसमय में राजमार्ग में पड़े-पड़े पाँव पीटकर मर जाते हैं परन्तु उनकी बात तक पूछनेवाला कोई नहीं मिलता। महात्मन्! यदि आत्मा से और विराट् आत्मा से प्रेम करना है तो अपने अङ्गों की भाँति सबको अपनाना होगा। अपनी क्षुधा-निवृत्ति की तरह उनकी भी चिन्ता करनी पड़ेगी। सच्चा परमात्मप्रेमी किसी से घृणा नहीं करता। वह ऊँच-नीच की भेद-भावना को त्याग देता है। उतने ही पुरुषार्थ से दूसरों के दुःख निवारण करता है, कष्ट-क्लेश काटता है, जितने से वह अपने करता है। ज्ञानी जन ही वास्तव में आत्मप्रेमी कहलाने के अधिकारी हैं।' वह साधु यह सुनकर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा, अपने अपराध को क्षमा कराने लगा।" (श्रीमद्दयानन्द प्रकाश)

स्वामी जी संवत् १९३५ के कुम्भ पर प्रचारार्थ पधारे। स्वामी जी के सिंहनाद से चहुँ ओर एक खलबली मच गई। स्वामी जी को सम्प्रदायों के खण्ड और आडम्बर देखकर देश की अधोगति पर दया आती थी। एक दिन की बात है, स्वामी जी बैठे-बैठे लेट गये और फिर उठकर टहलने लगे। एक भक्त ने पूछा, "महाराज! क्या कोई शारीरिक कष्ट है?" स्वामी जी ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"भाई! इससे अधिक हृदय-विदारक दारुण वेदना और क्या हो सकती है कि विधवाओं की दुःखभरी आहों से, अनाथों के निरन्तर आर्त्तनाद से और गोवध से, इस देश का सर्वनाश हो रहा है।" कैसी कसक है!'

हरिद्वार में ही एक दिन एक पुरुष ने स्वामी जी से कहा कि यदि आप अपने ग्रन्थों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद कर दें तो जो लोग आर्य भाषा नहीं जानते उन्हें वैदिक धर्म के जानने में बड़ी सुविधा हो। ऋषि ने उत्तर दिया कि भारतवासियों को आर्य भाषा का सीख लेना कुछ कठिन नहीं

है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा के सीखने का परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? महाराज का विचार था कि सारे भारत की एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए और वे आर्य भाषा (हिन्दी) को ही इस योग्य समझते थे।

महाराज दानापुर में वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार कर रहे थे। एक रात्रि को वे आधी रात के समय जाग पड़े और उठकर इधर-उधर घूमने लगे। उनके पैरों की आहट पाकर एक कर्मचारी की आँख भी खुल गई। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि स्वामी जी किसी बड़ी व्याकुलता और घबराहट में घूम रहे हैं। उसने विनयपूर्वक निवेदन किया, "भगवन्! यदि कोई वेदना है तो आज्ञा दीजिए, सेवक औषधोपचार करने के लिए उपस्थित है। यदि आदेश हो तो वैद्य को भी बुला लाऊँ।"

उस समय स्वामी जी ने दीर्घ साँस छोड़ते हुए कहा, "भाई! यह बड़े वेग से बढ़ती हुई वेदना, आपके औषधोपचार से शमन होनेवाली नहीं है। यह वेदना भारत के परिश्रमी लोगों की दुर्दशा के चिन्तन से चित्त में अभी उत्पन्न हुई है। ईसाई लोग कोल-भील आदि भारतवासियों को ईसाई बनाने के लिए अपनी कल्पनाओं के ताने-बाने तन रहे हैं। रुपया भी पानी की भाँति बहाने को तत्पर हैं। परन्तु इधर आर्य जाति के भी पुरोहित हैं जो कुम्भकर्ण की नींद पड़े सोते हैं। उनके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। यही पीड़ा है जो मुझे सता रही है।" कैसी विमल देशभक्ति है!

इक टीस जिगर में उठती है, इक दर्द-सा दिल में होता है,
हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है॥

यह उक्ति महर्षि के जीवन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है।

संवत् १९३८ में महाराज बम्बई में विराजमान थे। उन्हीं दिनों पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम् भारत पधारे। एक दिन वे स्वामी जी से मिलने के लिए आये। बहुत देर तक वार्तालाप करने के पश्चात् मोनियर महाशय ने कहा, "आपके विचार परिमार्जित और अत्युच्च हैं। यूरोपवासियों में भी इन विचारों का प्रचार होना चाहिए। यदि आप उस महाद्वीप की यात्रा करना स्वीकार करें तो मैं आपके व्यय आदि का भार अपने ऊपर लेता हूँ।"

स्वामी जी ने अतिथि को उसकी उदारता के लिए धन्यवाद देते हुए कहा, "जिस भारत-भू-खण्ड में मैं रहता हूँ वहाँ अविद्या-अन्धकार घोरतम रूप धारण किये बैठा है। इस देश के वासी दिन-पर-दिन दुःखी और दरिद्र होते चले जाते हैं। यहाँ के समाज में कुरीतियों और रूढ़ियों की भरमार है। ऐसे ही कारणों से मैं पहले इस देश का सुधार करना अपना मुख्य कर्तव्य समझता हूँ। दूसरे, विदेश जाने के लिए वहाँ की भाषा का ज्ञान आवश्यक है। जितना समय विदेशी भाषा सीखने में लगेगा उससे यहीं अधिक कार्य कर सकूँगा। तीसरे, जिस देह के इतने लोग विरोधी हैं उसका भी अब अधिक भरोसा नहीं है। थोड़े समय में यदि इस शरीर से इस देश का लाभ और कल्याण हो जाये तो बहुत अच्छा है।"

ऋषिवर स्वयं स्वदेशी वस्त्र पहनते थे और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते थे और अपने सम्पर्क में आनेवाले लोगों को भी स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की प्रेरणा देते थे। ऋषि-जीवन की दो घटनाओं से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जावेगी।

उन दिनों महाराज अलीगढ़ में विराजमान थे। एक दिन छावली-निवासी ठाकुर ऊधोसिंह अपने पिता और ठाकुर भूपालसिंह जी के साथ स्वामी जी के दर्शनों के लिए आये।

उस दिन ऊधोसिंह जी के वस्त्र नए ढंग के बने हुए और सब-के-सब विलायती कपड़े के थे। ऊधोसिंह ने कुछ समय तक छलेसर की पाठशाला में भी अध्ययन किया था, इसलिए स्वामी जी उन्हें भली प्रकार जानते थे। स्वामी जी ने प्रेमभरे शब्दों में उससे कहा—"ऊधव! देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के कपड़े के बने वस्त्र पहनते हैं। उनका जाति-बिरादरी में कितना मान है! क्या तुम इस विदेशी कपड़े से बने नए वेष से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक आदर के पात्र हो गये हो? ऊधव! अपने ही देश की वस्तुओं को अपनाने में शोभा है।"

स्वामी जी के इस उपदेश से प्रभावित होकर ऊधोसिंह जी ने घर जाकर वे विदेशी वस्त्र उतार दिये और पुराने ढंग के स्वदेशी वस्त्र पहन लिये।

एक बार स्वामी जी के एक भक्त ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम से महाराज को चाकू से सेब काटकर दिया। चाकू राजर्स का था। स्वामी जी की दृष्टि उसपर पड़ गई; बोले, "चाकू तो सुन्दर है, कितने का है?" भक्त ने गर्व से कहा, "महाराज! यह विलायती राजर्स का चाकू है, इसका मूल्य १।) है।" स्वामी जी ने पूछा, "क्या यहाँ भी चाकू बनते हैं?" भक्त ने कहा, "हाँ महाराज!" ऋषि ने पुनः पूछा, "कितने का मिल जाता है?" भक्त ने कहा, "छः पैसे में।" स्वामी जी ने अगला प्रश्न किया, "क्या वह चाकू सेब काट सकता है और इसी प्रकार के अन्य काम कर सकता है?" भक्त ने कहा, "हाँ महाराज!" तब देशभक्त दयानन्द ने कुछ क्रुद्ध होकर घृणात्मक मुद्रा में कहना प्रारम्भ किया, "जब अपने देश का बना छः पैसे का चाकू यही काम कर सकता है तो तुमने सवा रुपये का विदेशी चाकू मोल लेकर क्यों अपने देश का धन नष्ट किया?" यह है स्वामी जी का देशप्रेम!

अन्त में हम स्वामी जी के देशप्रेम को प्रकट करनेवाले सन्दर्भ को उन्हीं के शब्दों में उद्धत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। स्वदेश की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं—

"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण-भूमि है क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिए सृष्टि की आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे। जितने भूगोल में देश हैं वे इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो भूंठी है परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोह-रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

□

निर्भीक दयानन्द

महर्षि दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् मैडम ब्लेवस्तिकी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा था—

"जन-समूह के उबलते हुए क्रोध के सामने कोई संगमरमर की मूर्ति भी स्वामी जी से अधिक अडिग नहीं हो सकती। एक बार हमने उन्हें काम करते देखा था। उन्होंने अपने सभी विश्वासी अनुयायियों को यह कहकर अलग हटा दिया कि तुम्हें हमारी रक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भीड़ के सामने वे अकेले ही खड़े हो गये। लोग उतावले हो रहे थे। क्रुद्ध सिंह के समान वे स्वामी जी पर टूट पड़ने को तैयार थे। किन्तु स्वामी जी की धीरता ज्यों-की-त्यों बनी रही।...यह बिल्कुल सही बात है कि शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो।"

(Renaissance of Hinduism)

भारत का यह आध्यात्मिक योद्धा और शक्ति का पुञ्ज निर्भय था। उन्होंने एक बार कहा था, "मैं परमात्मा के अतिरिक्त किसी से नहीं डरता।"

जब महर्षि ने जोधपुर में महाराजा को नन्हींजान वेश्या के साथ देखा तो वे सिंहनाद करते हुए गर्जकर बोले, "सिंहों के आसन पर कुतिया का राज्य! इन कुतियों से कुत्ते ही उत्पन्न होंगे।" एक उर्दू के कवि ने क्या खूब कहा है—

इस तरह का हमने ऐसा रहनुमा देखा नहीं।
यूँ निडर यूँ बेखतर यूँ पेशवा देखा नहीं॥

स्वामी जी मिर्जापुर में प्रचार कर रहे थे। एक दिन पादरी जे० जे० लूकस ने उनसे प्रश्न किया कि यदि आपको तोप के मुख पर रखकर आपसे कहा जाये कि यदि तुम मूर्ति को मस्तक नहीं नवाओगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायेगा, तो आप क्या कहेंगे? स्वामी जी ने उत्तर दिया था कि मैं कहूँगा कि उड़ा दो। कितनी निडरता है! और हो भी क्यों न?

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्,
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः॥

धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति गृहस्था पत्नी है, सत्य पुत्र है, दया बहन है, मन का संयम भ्राता है, भूमि ही शय्या है, दिशाएँ ही वस्त्र हैं, ज्ञानरस ही भोजन है, ऐसे योगी को संसार में भय कहाँ?

लीजिये अब आप महर्षि दयानन्द की निर्भीकता सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण और रोंगटे खड़े कर देनेवाली घटनाएँ पढ़िये और स्वयं भी निर्भय बनने का प्रयत्न कीजिये—

महाराज काश्मीर ने स्वामी जी को रियासत में आने का निमन्त्रण भेजा, परन्तु साथ ही यह भी कहला भेजा कि यहाँ आकर मूर्ति-पूजा का खण्डन न करें। स्वामी जी ने उत्तर में कहला भेजा—पहले तो मुझे आने का अवकाश ही नहीं है, परन्तु मुझे अवकाश मिला और मैं आया तो सबसे पहला व्याख्यान मूर्ति-पूजा पर ही दूंगा। यह थी ऋषि की निर्भीकता!

महाराज जसवन्तसिंह जी ने ऋषिवर को जोधपुर आमन्त्रित किया। जब स्वामी जी महाराज वहाँ गये तो प्रति-दिन सायंकाल ४ से ६ बजे तक वैदिक धर्म-मण्डन तथा ईसाई आदि मतों का खण्डन किया करते थे। नित्य पाँच सहस्र के

लगभग उपस्थिति होती थी। एक दिन स्वामी जी ईसाई मत के विषय में कुछ कह रहे थे। उस समय फ़ैज़ुल्ला खाँ लेट-मिनिस्टर के भतीजे मोहम्मद हुसेन ने हाथ में तलवार लेकर बल्कि मूठ पर हाथ धरकर कहा, "स्वामी जी! हमारे मज़हब के सम्बन्ध में कुछ मत कहना।" उस समय निर्भय दयानन्द ने उत्तर दिया—"मैं ईसाई मत पर बोल रहा हूँ, इसको पूरा करके तुम्हारे मोहम्मद साहेब की पोल और इस्लाम मज़हब की धज्जियाँ उड़ाऊँगा।" फिर क्या था! थोड़ी ही देर में ज़मीन, आसमान व सातों आसमानों तक की व्याख्या की गई। उस समय फ़ैज़ुल्ला खाँ ने अपने भतीजे को खूब डाँटा और कहा कि अब इसका क्या उत्तर देता है? वहाँ से मोहम्मद हुसेन का भागना कठिन हो गया। पता नहीं हुल्लड़ में किस समय भाग गया, परन्तु निर्भीक दयानन्द उसी प्रकार गर्जते रहे।

जोधपुर की ही एक और घटना है—

स्वामी जी प्रातःकाल वायु-सेवनार्थ रातानाड़ा के पहाड़ पर जाया करते थे और वहीं योगाभ्यास आदि किया करते थे। उस पहाड़ पर बहुधा हिंसक पशु रहते थे। अतः महाराज ने एक सवार स्वामी जी के साथ आने-जाने के लिए नियत कर दिया। जिस समय स्वामी जी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने उस सवार को अपने साथ जाने से रोक दिया और कहा—"जो परमात्मा प्राणिमात्र की रक्षा करता है वही मेरी रक्षा करेगा। तुम्हारे रक्षा करने से मैं रक्षित नहीं रहूँगा। मुझे परमात्मा ने जो बाहुबल दिया है, वही पर्याप्त है। मैं उसी का भरोसा करता हूँ, दूसरों के बल का सहारा मैं नहीं करता।"

मेरठ नगर में स्वामी जी ने मृतक-श्राद्ध-खण्डन पर एक व्याख्यान दिया। इससे वहाँ के ब्राह्मण-वर्ग में खलबली

मच गई। व्याख्यान-समाप्ति पर स्वामी जी को जिस मार्ग से जाना था, वे लोग लाठियाँ लेकर उस स्थान पर बैठ गए और कहने लगे—"आज दयानन्द इधर से निकले तो सही ! हम उसे जीता न छोड़ेंगे।"

स्वामी जी के भक्तों को भी इसका भेद मिल गया। व्याख्यान के पश्चात् जब स्वामी जी डेरे पर जाने लगे तो भक्तों ने प्रार्थना की, "भगवन् ! कुछ देर ठहर जाइये। पहले प्रबन्ध कर लेने दीजिये। आज कुछ उपद्रवी लोग मार्ग में लट्ठ लिये बैठे हैं और आपके ऊपर आक्रमण करना चाहते हैं।"

स्वामी जी ने हँसते हुए कहा, "वे लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। ऐसी घटनाओं से मैं सर्वथा निर्भय हूँ। मैंने एक सभ्य को समय दे रक्खा है, इसलिए ठहर नहीं सकता।"

स्वामी जी महाराज उस सारी गली में गम्भीर गति से चलते हुए उसके दूसरे छोर तक पहुँच गये, परन्तु किसी को 'ओ' तक कहने का साहस नहीं हुआ। वे उपद्रवी एक-दूसरे का मुंह ही ताकते रह गये।

जब महाराज काशी गये तो वहाँ की पण्डित-मण्डली को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। पण्डितों में शास्त्रार्थ का दम तो कहाँ था, परन्तु जैसे-तैसे अपनी लाज बचाने के उपाय सोचे जाने लगे। स्वामी जी को पीड़ा देने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे जाने लगे। जब भक्त बलदेव को उपद्रव का आभास मिला तो उसने स्वामी जी से निवेदन किया, "भगवन् ! आज आपके स्थान पर सहस्रों मनुष्यों का जमघटा लगेगा। उसमें केवल हुल्लड़ मचाने के लिए भी कुछ उद्दण्डजन आयेंगे। यदि फर्रुखाबाद होता तो ऐसे समय में आपके समीप भी २०-२५ सेवक बैठ जाते।"

महाराज ने कहा, "बलदेव ! कोई चिन्ता की बात नहीं। अन्धकार की तमोराशि को जीतने के लिये सूर्य अकेला ही पर्याप्त होता है। एक मैं—आत्मा हूँ, एक परमात्मा है और एक ही धर्म है। फिर डर और भय किसका ?" सचमुच जो 'ब्रह्म वर्म ममान्तरम्' (ऋग्वेद ६।७५।१९) ईश्वर मेरा कवच है, इस वैदिक आदर्श को हृदयङ्गम कर लेता है, जो हर समय अपने-आपको ईश्वर की गोद में अनुभव करता है उसे भय कहाँ ?

एक बार स्वामी जी सोरों में उपदेश दे रहे थे। बीसियों व्यक्ति ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे थे। इतने में ही कन्धे पर एक मोटा डण्डा रक्खे हुए एक हट्टा-कट्टा पहलवान-सा जाट वहाँ आया और लोगों को चीरता हुआ स्वामी जी की ओर ही बढ़ा। उसका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। होंठ चबाता और दाँत पीसता हुआ वह स्वामी जी से बोला, "अरे साधु ! तू ठाकुर-पूजा का खण्डन करता है और श्री गङ्गा मैया की निन्दा करता है, देवताओं के विरुद्ध बोलता है। झटपट बता, यह सोटा तेरे कहाँ मारूँ ?" ये वचन सुनकर सारी सभा विचलित हो गई, परन्तु स्वामी जी की गम्भीरता में तनिक भी अन्तर नहीं आया उन्होंने शान्तभाव से मुस्कराते हुए कहा। "भद्र ! यदि तेरे विचार में मेरा धर्म-प्रचार करना कोई अपराध है, तो इस अपराध का प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है। यदि तू अपराधी को दण्ड देना चाहता है तो यह सोटा मेरे सिर पर मार दे।" इन वाक्यों को कहते हुए स्वामी जी ने अपनी नेत्र-ज्योति उसकी आँखों में डालकर उसे देखा तो वह श्री-चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना करने लगा। यहाँ क्या देर थी ! स्वामी जी ने आश्वासन देते हुए कहा, "तुमने कोई अपराध नहीं किया। मुझे मारते, तो भी कोई बात थी।"

कर्णवास में कर्णसिंह स्वामी जी से चिढ़ गये और उन्हें मारने का उपाय सोचने लगे। एक रात्रि को उसने अपने तीन नौकरों को अति तीक्ष्ण तलवारें देकर स्वामी जी के वध के लिए भेजा। आधी रात का समय था। चहुँ ओर सन्नाटा था। स्वामी जी ध्यानारूढ़ थे और पास ही कैथलसिंह गाढ़ निद्रा में पड़ा खर्राटे ले रहा था। कर्णसिंह के नौकर दो बार तो लौट गये परन्तु कर्णसिंह ने उन्हें डाँट-फटकारकर तीसरी बार पुनः भेजा। उस समय स्वामी जी समाधि से उतर आये थे और कर्णसिंह ने अपने नौकरों को जो डाँट-डपट की थी उसे भी सुन लिया था। जब आततायी गिरते पड़ते स्वामी जी की कुटी के पास पहुँचे तो स्वामी जी ने बलपूर्वक हुंकार किया और भूमि पर एक लात भी मारी। स्वामी जी की हुंकार सुनकर वे मूछित होकर गिर पड़े और तलवारें भी हाथ से गिर गईं।

महाराज की सिंह-गर्जना सुनकर कैथलसिंह की भी आँख खुल गई। वह काँपता हुआ स्वामी जी से बोला, "वे दुष्ट-जन कहीं फिर न आ जायें इसलिए चलिए किसी ऊँचे स्थान पर चलकर रात्रि व्यतीत कर लें।"
तब स्वामी जी ने

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
(गीता० २। २३)

(अर्थात् इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती) गीता का यह श्लोक पढ़ते हुए कहा—"कैथलसिंह! संन्यासी जन अपनी रक्षार्थ गढ़ और गुहा का आश्रय नहीं ढूंढा करते; हमारा रक्षक तो केवल एक भक्तवत्सल भगवान्

ही है। तुम्हें घबराना नहीं चाहिए। हम चाहें तो उनके ही शस्त्रों को छीनकर उन्हें सीधा कर सकते हैं।"

स्वामी जी कभी-कभी अपने जीवन की घटनाएँ भी सुनाया करते थे। फर्रुखाबाद में पञ्जाब के एक नगर का वर्णन करते हुए महाराज ने निम्न घटना सुनाई—

"वहाँ मैंने विज्ञापनों द्वारा घोषणा कर दी कि कल ईसाइयों का खण्डन किया जायेगा। व्याख्यान के समय बहुत-से देशी और योरुपीय ईसाई तथा पादरी महाशय आकर बैठ गये। उस समय प्रधान सेनापति लार्ड राबर्ट्स महोदय भी वहाँ उपस्थित थे। उस दिन मैंने अपने सारे सामर्थ्य से ईसाई मत की समालोचना की। उसपर आक्षेप किये। बाइबल में परस्पर-विरोध दिखाया। परन्तु रुष्ट होना तो दूर, प्रधान सेनापति अति प्रसन्न हुए। व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने पास आकर मुझसे हाथ मिलाया और कहा कि निस्सन्देह आप निर्भय पुरुष हैं। हम लोगों की उपस्थिति में हमारे धर्म का खण्डन करते आप तनिक भी नहीं हिचके, तो भला दूसरों से आपको कब भय हो सकता है!"

मनुष्यों की तो बात ही क्या, स्वामी जी को हिंसक पशुओं से भी भय नहीं था। वे सिंह और भालुओं से आपूर वनों में निर्भय होकर चले जाते थे। वे शिव के समान सर्पों की माला धारण कर सकते थे और मगरमच्छों के साथ सो सकते थे।

कानपुर की घटना है। एक दिन स्वामी जी गंगा में लेटे पड़े थे। उनका आधा शरीर पानी के अन्दर था, आधा बाहर। उसी समय एक बड़ा भारी मगर उनके अति निकट आ निकला। भक्त प्यारेलाल जी स्वामी जी को संकट के समीप देख भागते हुए निकट आए और जोर से चिल्लाने लगे, "स्वामी जो! झटपट पानी से बाहर निकल जाइये, एक बड़ा भारी मगर निकल आया है।" महाराज ने सुना

परन्तु वे गम्भीरतापूर्वक वैसे ही लेटे रहे और बोले, "जब हम इसे कुछ नहीं कहते तो यह भी हमें कुछ नहीं कहेगा।" और कहता भी क्यों ?

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा यश्चरते मुनिः।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित्॥

जो मुनि सर्व प्राणियों को अभयदान देकर विचरता है उसको किसी से कभी कोई भय नहीं होता।

स्वामी जी की निर्भीकता के सम्बन्ध में एक घटना प्रसिद्ध सनातनधर्मी संन्यासी स्वामी गुरुचरणदास जी ने सुनाई थी। पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के लिए मैं उसे यहाँ अंकित करता हूँ—

एक बार एक साधु ने ऋषि दयानन्द से पूछा, "आप भी खाते हैं, हम भी खाते हैं। आप भी पढ़ते हैं, हम भी पढ़ते हैं। आप भी वस्त्र धारण करते हैं, हम भी वस्त्र पहनते हैं। आप भी उपदेश देते हैं, हम भी उपदेश देते हैं। परन्तु आपके समान हमारा प्रभाव नहीं पड़ता। आपमें और हममें क्या अन्तर है?"

सायंकाल एक सभा होनी थी जिसमें अनेक राजा और महाराजा आमन्त्रित थे। स्वामी जी ने कहा, "आपके प्रश्न का उत्तर सभा में मिल जायेगा।" सायंकाल सभा हुई। अनेक व्यक्ति और संन्यासी उस सभा में बोले। जब महर्षि दयानन्द बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अन्य वक्ताओं की भाँति 'आदर के योग्य मातृशक्ति और उपस्थित सभ्यो' नहीं कहा। इसी प्रकार का कोई अन्य सम्बोधन भी उन्होंने नहीं किया, अपितु वे गर्जकर बोले, "ओ अभिमान के पुतलो! ओ शोहरत के पुजारियो! ओ मद्य-मांस का सेवन करने-वालो! विषय-वासना के कीड़ो! विषयलोलुप विद्वानो!" और फिर अपना व्याख्यान आरम्भ किया। कहने की

आवश्यकता नहीं कि साधु को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।

महर्षि की निर्भीकता देखने के लिए तनिक इतिहास के पन्ने पलटिये। भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में नामधारी सिखों का विशेष स्थान रहा है। जिस समय अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध एक शब्द कहना कठिन था, उस समय श्री सत्गुरु रामसिंह जी और उनके नामधारी सिखों ने अंग्रेज़ी राज्य से असहयोग करके नाना प्रकार के कष्ट सहन किये और यातनाएँ झेलीं। जहाँ उन्होंने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये त्याग और बलिदान किये, वहाँ भारत की आत्मा गो की रक्षा के लिए भी वे पीछे नहीं रहे। अमृतसर के पवित्र सरोवर के निकट बने बूचड़खाने को तोड़ने के अपराध में ५ अगस्त १८७१ को ३ तथा २६ नवम्बर १८७१ को २ नामधारी सिख भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए फांसी के तख्ते पर झूले।

जब नामधारी सिखों ने रामकोट और मालेरकोटला में होनेवाले अत्याचारों को देखा तो बूचड़खानों को तोड़ दिया। गोहत्यारों से संघर्ष कर उन्हें पराजित कर दिया। इस संघर्ष में कितने ही नामधारी गोभक्त मौत के घाट उतारे गये। अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा से १० जनवरी १८७२ को ४९ तथा १८ जनवरी को १६ नामधारी सिख मालेरकोटला के निकट नाभा, जींद और पटियाला के राजाओं द्वारा भेजी हुई तोपों से उड़ाये गये।

जिस गोरक्षा के कारण इन नामधारी सिखों को तोपों से उड़ाया गया था, उसी गोरक्षा के प्रश्न को लेकर १८७६ में हम महर्षि दयानन्द को कार्यक्षेत्र में देखते हैं। कैसी निर्भीकता है!

श्रीमती ऐनी बीसेण्ट ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

"मेरा यह जबरदस्त विश्वास है कि स्वामी दयानन्द भारत का सच्चा सपूत था। उसमें गज़ब की निडरता और भारत के लिए अगाध भक्ति का समुद्र ठाठें मारता था। महर्षि का शानदार काम उनकी याद को सदा तरोताज़ा रक्खेगा।"

अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है—

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(हमें मित्र से भय न हो, शत्रु से भय न हो, ज्ञानी से भय न हो, रात्रि में भय न हो, दिन में भय न हो, सारी दिशाएँ मेरी मित्र हों।)

इस मन्त्र के अनुसार उनमें निर्भयता कूट-कूटकर भरी हुई थी। उन्हें मित्र, शत्रु, राजा और महाराजा, विद्वान् और मूर्ख, किसी से कोई भय नहीं था। लोगों ने ऋषि को तंग करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी थी। उनके ऊपर ईंट और पत्थर फेंके गये, तलवारों के प्रहार किये गये, गाली-गलौच की बौछाड़ की गई, परन्तु ऋषिवर कभी भी भयभीत नहीं हुए। सच है—

किनारों से जो टक्कर ले उसे तूफान कहते हैं।
जो तूफानों से टकराये उसे इन्सान कहते हैं॥

अभी इस चित्र का एक पहलू शेष है। संसार में सबसे भयंकर वस्तु क्या है? **मृत्यु**। जिसका नाम सुनकर बड़े-बड़े योद्धाओं और विजेताओं के छक्के छूट जाते हैं वह क्या है? **मृत्यु**। जिसका नाम सुनकर बड़े-बड़े सुधारक भी घबरा जाते हैं वह क्या है? **मृत्यु**। जब महान् विजेता नैपोलियन बोनापार्ट को मृत्युदण्ड की आज्ञा हुई तो वह कांप गया। जब ईसा को फाँसी पर चढ़ाया गया तो उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े, "हे पिता! क्या तू मुझे भूल गया?" मोहम्मद साहब मृत्यु के समय अत्यन्त दुःखी थे। परन्तु महर्षि दयानन्द

के मुखमण्डल पर आभा और कान्ति थी; एक अद्भुत आभा, लावण्य, शक्ति, ओज और तेज था। गीता के शब्दों में—

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

आकाश में एक-साथ सहस्रों सूर्यों के उदय होने से जैसा प्रकाश होता है, उस महात्मा के मुखमण्डल पर भी ऐसी ही आभा और ज्योति थी। जब महर्षि की मृत्यु का समय आया तो मृत्यु उनके चेहरे की मुस्कान, आह्लादकता और शान्ति को न छीन सकी। मृत्यु को सामने खड़ी देखकर तो वे प्रसन्न हो रहे थे। एक कवि के शब्दों में—

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिये कब पाइये, पूर्ण परमानन्द॥

उन्होंने हँसते-हँसते मृत्यु का आलिङ्गन किया। मृत्यु के समय महर्षि दयानन्द के शब्द अपूर्व, अद्भुत और निराले थे। उन्होंने कहा—

"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, सचमुच तेरी यही इच्छा है। परमात्मदेव! तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा, मेरे परमेश्वर! तूने अच्छी लीला की।"

□

परोपकारी दयानन्द

वृक्ष फले न आपको, नदी न भक्षे नीर।
परमारथ के कारने, सन्तन धरा शरीर।।

ऋषिवर परोपकार की साक्षात् मूर्ति थे। उन्होंने लोक-हित के कामों पर भी उतना बल दिया है जितना आत्मकल्याण के कामों पर। उनका सारा जीवन परोपकार-परायणता से ओत-प्रोत था।

वैदिक धर्म में नारी का स्थान बड़ा ही उच्च एवं गौरव-पूर्ण है। यजुर्वेद १३।२ में उसे 'ध्रुवासि धरुणा' कहकर ध्रुव और गृहस्थाश्रम का आधार बताया गया है। एक अन्य स्थान पर उसे स्तुति-योग्य, स्वीकार करने योग्य, कमनीय, चन्द्रमा के समान आह्लादकारिणी और पूजनीया बताया गया है। परन्तु महाभारत के पश्चात् एक ऐसा युग भी आया जब नारी को अपमानित और पददलित समझा जाने लगा। उसे पैर की जूती बताया जाने लगा। श्री दत्तात्रेय-विरचित 'अवधूत-गीता' में मातृशक्ति के निरादर और अपमान में जो शब्द लिखे गये हैं उन्हें लिखते हुए तो हमारी लेखनी को भी लज्जा आती है; अतः उन गन्दे भ्रष्ट स्थलों को तो इस पावन चरित्र में न देना ही उत्तम है।

स्वामी शंकराचार्य ने प्रश्नोत्तरी में लिखा—

द्वारं किमेकं नरकस्य ? नारी।

नरक का द्वार क्या है ? नारी। यह है शंकराचार्य की मातृशक्ति के प्रति श्रद्धाञ्जलि।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।

एक अन्य स्थान पर लिखा है—

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं।।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया।।

कबीरदास जी ने कहा है—

छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल।
वैरी मारे दाव से, यह मारे हँस-खेल।।

महर्षि ने नारी जाति के खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त कराया। ऋषि ने नारी को पैर की जूती के स्थान पर सिर की पगड़ी के तुल्य बताया। महर्षि मनु के स्वर में स्वर मिला-कर ऋषिवर ने कहा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जहाँ नारियों का आदर और सत्कार होता है वहाँ उस गृहस्थाश्रम में देव-विद्वान् लोग रमण करते हैं।

ऋषि दयानन्द के कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व स्त्रियों को वेद-विद्या का अधिकारी न माना जाता था। "स्त्री शूद्रो नाधीयतामिति श्रुतिः" आदि मिथ्या कपोलकल्पित वचनों के आधार पर उसे विद्या-ग्रहणमात्र से ही वंचित रक्खा जाता था। महर्षि ने उसे विद्या ग्रहण करने का भी अधिकार दिलाया।

यह महर्षि दयानन्द के ही परिश्रम और पुरुषार्थ का फल है कि अब कन्याओं के भी यज्ञोपवीत होने लगे हैं। आज स्त्रियाँ भी विद्या के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है आज स्त्री-शिक्षा के विरोधी भी कन्या पाठशाला खोल रहे हैं। प्रसिद्ध सनातनधर्मी नेता पं० मौलिचन्द्र शर्मा ने एक बार ऋषि-बोधोत्सव के अवसर पर महर्षि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था—"महर्षि दयानन्द की जिन बातों को हमारे बाप-दादाओं ने स्वीकार नहीं किया वे हमें स्वीकार करनी पड़ीं, और जिन्हें

हम स्वीकार नहीं कर रहे वे हमारी सन्तति को स्वीकार करनी पड़ेंगी। उदाहरण के रूप में प्रारम्भ में स्त्री-शिक्षा का घोर विरोध हुआ परन्तु अब सनातनधर्मी भी पीछे नहीं हैं।"

तथाकथित शूद्रों की दशा स्त्रियों से भी खराब थी। उनमें बहुसंख्यकों को अस्पृश्य माना जाता था। श्री शंकराचार्य जी ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—

"अथास्य (शूद्रस्य) वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपरिपूर्णमिति।...वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो, धारणे शरीरभेदः इति॥" (ब्रह्मसूत्र १।३।३८ पर शंकरभाष्य)

अर्थात शूद्र वेद के शब्द सुन ले तो उसके कान को सीसे और लाख से भर देना चाहिये। उच्चारण करने पर जिह्वा काट देनी चाहिए और स्मरण करने पर शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालने चाहियें। ऋषि ने उनको उनके सब अधिकार दिलवाये। प्रसिद्ध ऐतिहासज्ञ डा० काशीप्रसाद जायसवाल के शब्दों में—

"महात्मा बुद्ध से लेकर राजा राममोहनराय तक जिस कार्य (शूद्रोद्धार कार्य) में सफलता प्राप्त न कर सके, शास्त्र का आश्रय लेकर दयानन्द ने इस विषय में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।"

स्वामी जी ने इस विषय में उपदेश ही नहीं दिये, अपितु आचार द्वारा भी इस कार्य को किया। उदाहरणार्थ—जब स्वामी जी उत्तरप्रदेश में भ्रमण कर रहे थे तो एक दिन सुखवासीलाल साध स्वामी जी के लिए कढ़ी और भात बनाकर लाये। ऋषि ने प्रेमपूर्वक उसका आतिथ्य ग्रहण किया। जब लोगों ने आक्षेप किया कि 'महाराज! आप तो साध का भोजन खाकर भ्रष्ट हो गये' तो ऋषिवर ने कहा—"रोटी तो अन्न की थी। यदि वह अपवित्र पदार्थों अथवा पाप की कमाई की बनी होती तो निषिद्ध थी। ये साध लोग तो कृषि करते

हैं, परिश्रम से कमाते हैं; चोरी नहीं करते। अतः इनके अन्न में कोई दोष नहीं है।"

आर्यसमाज ने ऋषि के इस उपदेश से वह कार्य कर दिखाया है कि संसार दंग रह गया है। आर्यसमाज के प्रचार से अब डोमों, मेघों, रहतियों और चमारों आदिकों में अनेक गुरुकुल के स्नातक, शास्त्री, बी० ए० और वकील आदि हैं। यह सब-कुछ ऋषि के ही उपकार का फल है।

ऋषि ने वेदामृत पान करने का द्वार सबके लिए खोल-दिया। जो वेद अज्ञान, अविद्या और स्वार्थ के कारण कुछ गिने-चुने मनुष्यों की गोपनीय निधि बन गया था, महर्षि दयानन्द ने उस 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म' बताया। उन्होंने मनुष्यमात्र को वेदाधिकार देने के लिए निम्न मन्त्र प्रस्तुत किया—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय॥
(यजु० २६।२)

परमेश्वर उपदेश देता है, जैसे मैं इस कल्याणी (वेद) वाणी को मनुष्यमात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्वभक्त एवं स्वविरोधी के लिए देता हूँ इस प्रकार तुम भी करो।

महर्षि दयानन्द के इस भाव की पुष्टि प्रसिद्ध बंगाली वैदिक विद्वान् सत्यव्रत सामश्रमी जी ने भी अपने ऐतरेयालोचन में की है।

अब ऋषि की एक युक्ति भी देखिये—

"क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रियाँ क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्न

आदि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं वैसे ही, वेद सबके लिए प्रकाशित किये हैं।" (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

कितना बड़ा उपकार है ! जो कार्य सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने किया था, इस युग में वही कार्य महर्षि दयानन्द ने किया है। ऋषि दयानन्द ने लोगों के आलस्य और प्रमाद-रूपी शंखासुर को मारकर वेद का उद्धार कर उसे मनुष्यमात्र की सम्पत्ति बना दिया। धन्य हो !

एक अन्य उपकार की बात सुनिये ! भारतवर्ष में यह रोग चल पड़ा था कि यहाँ के महात्मा और योगी लोग अपने आनन्द की धुन में जंगलों को चल देते थे। उनको अपने देश के दुःख की कोई चिन्ता नहीं थी। वह महानता की आड़ में छिपा हुआ स्वार्थ था। स्वामी जी ने इस स्वार्थ को लोगों के सामने रख दिया और यह उपदेश दिया कि तुम्हारे चारों ओर अविद्या, अन्धकार, निर्धनता, दुःख, संकट और आपत्ति है तो तुम अकेले इन सारी बातों की ओर से नेत्र बन्द करके इन संकटों को दूर किये विना ईश्वर के दरबार में कैसे पहुँच सकते हो ? तुम्हारे ज्ञान और तुम्हारी भक्ति की यह कसौटी है कि तुम्हारे ज्ञानयोग और भक्तियोग-रूपी वृक्ष पर सुन्दर पुष्प खिलें और फल लगें। ऋषि जीवनभर दुःखियों के कष्टों में सम्मिलित हुए और दूसरों को भी ऐसा करने का उपदेश देते रहे।

अपने गुरु के आदेश को शिरोधार्य कर जब ऋषिवर रूढ़ियों, कुरीतियों और पाखण्डों का विध्वंस करते हुए तथा वेद का नाद बजाते हुए संवत् १९२६ वि० माघ वदि ५ को प्रयाग पधारे और धूमधाम से प्रचार करने लगे तो एक दिन एक साधु ने कहा—'दयानन्द जी ! इतने परमहंस—त्यागी होकर तुम प्रवृत्ति के चक्र में पड़े हो।' तब निवृत्ति-मार्ग के परम रहस्यवेत्ता दयानन्द ने उस साधु को पराभूत करने के

लिए अपने व्याख्यान में कहा—

"क्रियात्मक जीवन ही शुभ जीवन है। सारा दृश्यमान जगत् अपनी नित्य क्रिया में निरन्तर प्रवृत्त है। हमारे शरीर भी इस सृष्टि के अंशमात्र हैं। जब विराट् देह में निरन्तर गति है, क्रिया है और प्रवृत्ति है तो हम जो उसके एक अंशरूप हैं उनमें निवृत्ति और निष्क्रियता होना असम्भव है। आर्य धर्म में वेद-विहित कर्मों का करना और निषिद्ध कर्मों का त्यागना ही निवृत्ति-मार्ग है। जो इस मर्म को मन में धारण किये विना निवृत्ति का राग अलापते हैं, उन्हें अभी वैदिक धर्म का बोध नहीं हुआ है। जो लोग सत्योपदेश, प्रजाप्रेम और लोक-हित के कार्यों को छोड़कर अपने-आप को परम निष्क्रिय मानते हैं, उनसे भी देह का भरण-पोषण नहीं छूट सकता। मधूकड़ी माँगने के लिए वे भी दो-दो कोस तक जाते हैं। यों ही तीर्थों पर घूमते-फिरते हैं। सच तो यह है कि सत्य और पर-कल्याण के लिए अपने सुखों को त्यागना—जीवन तक को लगा देना ही सर्वोत्तम त्याग है।"

महाराज ने आगे कहा—"परोपकार के विना नर-जीवन मृग-जीवन से उच्च नहीं है। सैकड़ों साम्प्रदायिक साधु लोग इस मेले में आये हुए हैं। ये गृहस्थों का नित्य आठ आने का पदार्थ खाकर जंगलों में पड़े रहते हैं। सोचिये तो सही, इनमें और मृगों में भेद ही क्या है ? यह तो पशु-पक्षियों को सहज ही से उपलब्ध है।"

एक बार स्वामी जी ने बाबा जवाहरदास को भी कहा, "आप भी उपदेश करने लग जाइये।" इसके उत्तर में उन्होंने उपहास-रस में कहा, "आपका तो कोई ठौर-ठिकाना नहीं, इसलिए देशदेशान्तर में चक्कर लगाते फिरते हो। मैं डेरे-वाला हूँ। मुझसे उपदेश का काम नहीं हो सकता।"

यह सुनकर स्वामी जी ने कहा, "महात्मन् ! यह स्थान और डेरा पहले भी आपके पास नहीं था और अन्त में भी नहीं रहेगा। बीच में यों ही ममता बाँधे बैठे हो। **इसे छोड़ो और लोकहित में लग जाओ।"**

ऋषि ने अपना सम्पूर्ण जीवन परोपकारार्थ अर्पण कर दिया था। अपने समाधि के आनन्द को छोड़कर वे परोपकार में आनन्द लिया करते थे। 'भ्रान्तिनिवारण' पुस्तक की भूमिका में स्वामी जी लिखते हैं, "संसार को लाभ पहुँचाना ही मुझको चक्रवर्ती राज्य के तुल्य है।"

प्राचीन काल में महर्षि दधीचि ने असुरों के संहार के लिए अपनी हड्डियाँ प्रदान कर दी थीं। महाराज शिवि ने एक कबूतर की रक्षार्थ अपना मांस प्रस्तुत कर दिया था। महर्षि दयानन्द ने दधीचि और शिवि के इतिहास को पुनर्-जीवित कर दिया। वे जीवन-पर्यन्त परोपकार करते रहे और अन्त में यह आदेश दे गये कि मेरे शरीर की हड्डियाँ और भस्मी किसी खेत में डाल देना जिससे उसकी उपज बढ़ जाये। परोपकार की कैसी दिव्य एवं उदात्त भावना है !

बाल-विवाह के परिणामस्वरूप एक ओर तो निर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, अल्पजीवी और पराक्रमहीन सन्तान हो रही थी तो दूसरी ओर लाखों विधवायें विद्यमान थीं जिनमें अनेक एक-एक वर्ष की भी थीं। महर्षि दयानन्द ने बाल-विवाह का प्रबल खण्डन किया। उन्होंने विवाह के लिए पुरुष की अवस्था कम-से-कम २५ वर्ष और कन्या की कम-से-कम १६ वर्ष निर्धारित की। पुनर्विवाह की रीति चलाकर विधवाओं के कष्ट मिटाये।

जातीय अभिमान में डूबे हुए ब्राह्मणों की स्थिति भी बड़ी शोचनीय थी। "लाओ बीरबल ऐसा नर, पीर बावर्ची भिश्ती खर।" यह उक्ति उनपर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती

थी। महर्षि ने उन्हें भी जात्यभिमान त्यागकर गुणकर्मानुसार योग्यता प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

गोमाता की दशा भी बड़ी शोचनीय थी। प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व सहस्रों गौओं के गले पर छुरी चल जाती थी। स्वामी जी गौ माता के वकील बने। गोरक्षा के लिए उन्होंने रेवाड़ी (गुड़गाँवा) में सबसे पहली गोशाला स्थापित की। 'गोकरुणानिधि' नामक एक छोटी-सी परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक रचकर गौ का आर्थिक दृष्टिकोण से महत्त्व दर्शाया। स्वामी जी इससे ही सन्तुष्ट नहीं हुए; उन्होंने करोड़ों की संख्या में लोगों के हस्ताक्षर कराकर महारानी विक्टोरिया के पास मैमोरियल भेजने की योजना भी बनाई परन्तु उनके असामयिक बलिदान से यह कार्य अधूरा रह गया।

मुसलमान और ईसाई आर्यजाति के लालों को विधर्मी बनाने में लगे हुए थे। जो एक बार धर्मच्युत हुआ वह फिर वैदिक धर्म में नहीं आ सकता था। महर्षि दयानन्द ने देहरादून में एक मुसलमान की शुद्धि कर उसका नाम अलखधारी रक्खा और इस प्रकार शुद्धि का द्वार सबके लिए खोल दिया।

ऋषिवर प्रायः कहा करते थे—"यदि अपना भला करना ही उद्देश्य हो तो मनुष्यता क्या हुई ? अपने भले का भाव तो गधों में भी पाया जाता है। पशुमात्र अपने लिए जीता है। परोपकार और परहित-साधन का नाम ही मनुष्यत्व है।

वे स्वयं जब तक जिये, परहित-चिन्तन और परोपकार करते ही रहे। महर्षि एक अनुपम नेता और अद्भुत सुधारक थे। उन्होंने अँगुली उठा-उठाकर बताया और सर्वतोमुखी—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार किया। उन्होंने वेदों का उद्धार किया, रूढ़ियों, कुरीतियों, अज्ञान और अविद्या का नाश किया, पाखण्ड का खण्डन किया, वैदिक संस्कृति और सभ्यता का प्रचार किया, आर्यभाषा को अपनाने पर बल दिया, बालविवाह

का निषेध और विधवा-विवाह का समर्थन किया, अनाथों के लिए अनाथालय और गौओं के लिए गौशालाएँ खुलवाईं, गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली पर बल दिया, स्वदेशी का प्रचार किया, नाना देवताओं की बजाय एक और अद्वितीय, निराकार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् परमात्मा की पूजा का विधान किया। सबसे पूर्व स्वराज्य का उद्घोष उन्होंने ही किया। इस प्रकार उन्होंने कितने ही उपकार किये हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने ऋषि के उपकारों का वर्णन यूँ किया है—

तीस करोड़ नामर्दों में जो अकेला मर्द होकर जन्मा, बरसाती घास-फूँस और मच्छरों की तरह फैले हुए मनुष्य-जन्तु की मूर्खता की चरमसीमा के प्रमाणस्वरूप मतमतान्तरों को जिसने मुठमर्दी से विध्वंसिनी ज्वाला की तरह विध्वंस किया, मरे हुए हिन्दू धर्म को अपने जादू के चमत्कार से जीवित कर दिया और उसे नोच-नोचकर खानेवाले गीदड़ों को एक ही हुंकार में जिसने भगा दिया, कीड़े-मकोड़ों की तरह रेंगकर पलनेवाले हिन्दू बच्चों के लिए जिसने पुण्य-धाम गुरुकुलों और अनाथालयों की रचना की, निर्दयी हिन्दुओं की आँखों के सामने डकराती, गर्दन कटाती, गायों के आँसू जिसने अग्निनेत्र से देखे, अबला विधवाओं के ऊपर जिसने अमर छाया की और अछूतों के असाध्य घावों पर जिसने संजीवनी मरहम लगाया, जो करोड़ों व्यभिचारियों में अकेला अखण्ड ब्रह्मचारी था, जिसके प्रकाण्ड पाण्डित्य ने नदिया और काशी की पुरानी ईंटों को हिला दिया, सारी पृथिवी पर जिसकी आवाज गूँज गई थी, युग के देवता की तरह जिसने वेदों का उद्धार किया, जो प्रत्येक हिन्दू के दरवाज़े पर निरन्तर ५९ वर्ष तक आवाज़ में पुकारता रहा, "उठो, जागो, निर्भय रहो, खड़े रहो" और सच्चे सिपाही की तरह घाव

खाकर जिसने बीच रणक्षेत्र में प्राणों का विसर्जन किया वह दयानन्द था।"

अन्त में एक कवि के शब्दों में बस इतना ही कहा जा सकता है—

गिने जायें मुमकिन है सहरा के ज़र्रे,
समुन्दर के कतरे, फ़लक के किनारे।
मगर तेरे ऐहसाँ दयानन्द स्वामी,
है कैसे सम्भव गिने जायें सारे॥

□

सत्यवादी दयानन्द

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥
(अथर्व० ८ । ४ । १२)

विचारशील और विद्वान् मनुष्य के पास सत्य और असत्य दोनों वचन परस्पर स्पर्धा करते हुए आते हैं । उनमें से जो सरल और सत्य होता है विद्वान् उसकी रक्षा करता है और असत्य को मार भगाता है ।

महर्षि दयानन्द सत्य की जीती-जागती मूर्ति थे । उन्हें सत्य से अनन्य प्रेम और लगाव था । उन्हें प्रलोभन दिये गये, भय दिखाये गये परन्तु उन्होंने सत्य को कभी नहीं छोड़ा । उनका सत्यानुराग उनके ग्रन्थों से ही प्रकट होता है । ऋषि की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है 'सत्यार्थप्रकाश' । इस ग्रन्थ के बनाने के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं—

"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है । वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाये । किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है । जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है···परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है ।"

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की नींव को भी सत्य रूपी वारि (जल) से ही सींचा ।

बम्बई में अनेक सज्जनों ने इच्छा व्यक्त की कि आर्य-समाज स्थापित किया जाये । स्वामी जी भी सहमत हो गये । राजकृष्ण महाराज ने आर्यसमाज के नियम बनाने की इच्छा प्रकट की, तो स्वामी जी ने कहा कि नियम हम स्वयं बनायेंगे और एक नियमावली बना दी । राजकृष्ण महाराज ने कहा, "इन नियमों में जीव-ब्रह्म की एकता समाविष्ट कर दीजिये, पीछे उसे छोड़ देंगे । ऐसा करने से हम अनेक लोगों को आर्य-समाज की ओर आकर्षित कर सकेंगे ।"

ऋषि दयानन्द ने इसका जो उत्तर दिया वह उनकी सत्य-वादिता का द्योतक है । उन्होंने कहा, "मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूँगा ।" ऋषि ने कवि की इस उक्ति को चरितार्थ कर दिया—

सत्यवादी वह है जिसका मन वचन सब नेक है ।
जिसका दिल, जिसकी जुबाँ दोनों का मकसद एक है ॥

स्वामी जी को पॉलिसी (Policy) कहीं भी पसन्द न थी । थियासोफिस्टों से मतभेद होते ही उन्होंने सम्बन्ध विच्छेद कर दिया । एक और उदाहरण लीजिये—स्वामी जी का एक सेवक राजों-महाराजों के डेरों पर विज्ञापन बाँटने जाया करता था । उसने स्वामी जी से कहा, "स्वामी जी ! यदि आप ऊपर से पौराणिक बनकर भारत के राजाओं में प्रचार करें तो आपको अति अल्प-काल में आशातीत सफलता प्राप्त हो जाये ।" स्वामी जी ने डाँटते हुए कहा, "मैं अमृत को विष में मिश्रित करके देना नहीं चाहता । सचाई को छिपाना महापाप है । अन्त में सत्य ही की जय हुआ करती है ।"

आर्यसमाज के नियमों में उन्होंने सत्य के ऊपर कितना बल दिया है, तनिक अवलोकन कीजिये—

पहले नियम में कहा है 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।' दूसरे नियम में ईश्वर के विशेषणों का वर्णन करते हुए उसे सबसे पूर्व सत्+चित्+आनन्द लिखा है। तीसरे नियम में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताया है। चौथा नियम तो है ही सत्य के लिए। 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' तथा पाँचवें नियम में 'सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।' इससे सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी जी कितने सत्यनिष्ठ थे।

अजमेर में ऋषिवर का पादरी राबिन्सन, ग्रे और शूलब्रेड के साथ ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम और वेद विषय पर तीन दिन सम्वाद होता रहा। चौथे दिन भी सम्वाद हुआ। अगले दिन सम्वाद के लिए कोई पादरी नहीं आया। बाद में किसी दिन पादरी शूलब्रेड ने स्वामी जी से कहा कि ऐसी बातों से आप कभी कारावास में चले जायेंगे। स्वामी जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "सत्य के लिए कारावास कोई लज्जाजनक वार्ता नहीं है। धर्म-पथ पर आरूढ़ होकर मैं ऐसी बातों से सर्वथा निर्भय हो गया हूँ। प्रतिपक्षी लोग यदि अपने प्रभाव से ऐसा कष्ट दिलायेंगे तो जहाँ कष्ट सहते हुए मेरे चित्त में शोक की कोई तरंग भी उत्पन्न नहीं होगी, वहाँ मैं अपने प्रतिपक्षियों की अकल्याण-कामना भी कभी नहीं करूँगा। पादरी जी! मैं लोगों के डराने से सत्य को नहीं छोड़ सकता। ईसा को भी लोगों ने फाँसी पर लटका ही तो दिया था।"

फर्रुखाबाद में एक दिन मदिरा के नशे में चूर ज्वालाप्रसाद नामक व्यक्ति एक कुर्सी लिये हुए स्वामी जी के स्थान पर आया। वहाँ कुर्सी रखकर उसपर बैठ गया और लगा अनाप-शनाप बकने। वहाँ उपस्थित व्यक्तियों ने उसे ऐसा करने से

रोका परन्तु वह गाली देता ही रहा। स्वामी जी के सेवक मणिलाल आदि अपने क्रोध को रोक नहीं सके। स्वामी जी तो यह कहते ही रहे कि 'यह उन्मत्त है इसे कुछ मत कहो' परन्तु उन्होंने उस धूर्त को खूब पीटा और उसकी कुर्सी भी वहीं जला दी।

दूसरे दिन लाला जगन्नाथ स्वामी जी के पास आये और समाचार विदित होने पर कहने लगे, "स्वामी जी! यदि वह दुष्ट राजद्वार में जाकर आपके सेवकों पर मार-पीट का अभियोग चलावे और आपको वहाँ साक्षी देने बुलावें तो आप क्या कहेंगे?" स्वामी जी ने कहा, "कोई मिथ्या कथन थोड़े ही करेंगे। जो कुछ हुआ है वह सब कह देंगे।"

स्वामी जी प्रसंग उठने पर कहा करते थे कि पण्डित लोग अपनी प्रतिष्ठा, हानि और निन्दा के भय से सत्य को प्रकट नहीं करते परन्तु मैं इस मार्ग का अनुसरण नहीं करूँगा, अपितु अपने गुरुदेव के आदेशानुसार सत्य का प्रचार करके अपने देश में एक तुमुल आन्दोलन उपस्थित करूँगा।

यही कारण था कि स्वामी जी के उपदेश बिना लाग-लपेट के हुआ करते थे। अमृतसर सिक्खों का एक पवित्र स्थान माना जाता है और किसी का साहस नहीं होता था कि उस नगर में सिक्खों के विश्वास के विरुद्ध कुछ कह सके। परन्तु महर्षि के विचार में जो सत्य होता था उसे कहने से कभी नहीं चूकते थे। फलतः एक दिन अपने व्याख्यान में कहा, "अमृतसर अब अमृत-सर नहीं और न यह हर की पौड़ी है। किसी समय सरोवर का पानी उत्तम होगा तो यह सर अमृत के पानी वाला होगा। अब तो इसका पानी कुछ नहीं।" यह बात सिक्खों को बुरी प्रतीत हुई और कुछ निहंग सिक्खों ने अवसर पाकर उन्हें कत्ल करने का विचार किया परन्तु वे कृतकार्य न हो सके।

स्वामी जी सत्य को किसी भी मूल्य पर छोड़ना नहीं

चाहते थे। भरुच में एक दिन जेठालाल जी वकील ने श्री स्वामी जी से निवेदन किया, "महाराज ! यदि आप शास्त्रों द्वारा मूर्ति-पूजा का मण्डन करने लग जायें तो हम आपको शंकर का अवतार मानने लग जायेंगे ।" स्वामी जी ने कहा, "मुझे विश्वनाथ की पदवी का लालच काशी-नरेश ने भी दिया था, परन्तु मैं किसी भी वासना के वशीभूत होकर सत्य का परित्याग कभी भी नहीं कर सकता ।"

एक दिन व्याख्यान में बरेली के कलक्टर, कमिश्नर, पादरी स्कॉट और कतिपय अन्य अंग्रेज़ उपस्थित थे । महाराज पुराणों के दोष वर्णन कर रहे थे। वर्णन ऐसा मनोरंजक था कि क्या भारतीय और क्या अंग्रेज़ सभी हँस रहे थे । परन्तु जब महाराज ने देखा कि अंग्रेज़ों की हँसी बड़ी अवज्ञा और ग्लानि-सूचक है तो स्वामी जी ने उस विषय को वहीं समाप्त करके कहा, "यह तो हुई पौराणिकों की लीला, अब किरानियों की सुनिये । ये लोग ईसा का कुमारी से उत्पन्न होना बताते हैं और उसका दोष सर्वज्ञ, शुद्ध स्वरूप परमेश्वर पर लगाते हैं । यह घोर पाप करते हुए ये लोग तनिक भी लज्जित नहीं होते ।" फिर क्या था ! अंग्रेज़ों की हँसी क्रोध में परिवर्तित हो गई । परन्तु स्वामी जी उसी वेग में बोलते रहे और अन्त तक ईसाई मत की ही आलोचना करते रहे ।

दूसरे दिन कमिश्नर ने ला० लक्ष्मीनारायण को बुलाकर कहा, "आप पण्डित महाशय को कह दीजिये कि अधिक कठोर खण्डन से काम न लिया करें ।"

लक्ष्मीनारायण जी वचन तो दे आये परन्तु स्वामी जी तक सूचना पहुँचाए कौन ? अन्त में एक नास्तिक को पक्का किया गया । वह और लाला लक्ष्मीनारायण स्वामी जी के पास पहुँचे । स्वामी जी की भव्य मूर्ति को देखकर नास्तिक महोदय भी लड़खड़ा गये और इतना ही कहा कि खज़ान्ची

महोदय आपसे कुछ कहना चाहते हैं, इन्हें कमिश्नर साहब ने बुलाया था । अब तो सारी विपत्ति लाला लक्ष्मीनारायण के ऊपर ही आ पड़ी । सिर खुजाते हुए, खाँसते और खखारते हुए तथा रुक-रुककर बोले, "महाराज ! यदि नरमी से काम लिया जाये तो बहुत अच्छा है । इससे जनता पर प्रभाव भी बहुत अच्छा पड़ेगा और अंग्रेज़ भी प्रसन्न रहेंगे ।"

यह सुनकर स्वामी जी हँस पड़े और कहने लगे, "इतनी-सी बात पर ही आप गिड़गिड़ा रहे हैं ? इसी के लिए आपने हमारा इतना समय नष्ट किया ? कमिश्नर महाशय ने यही कहा है न कि आपका पण्डित बड़ा खण्डन करता है । उसके व्याख्यान बन्द हो जायेंगे । मैं कोई हव्वा तो था नहीं, सीधे ही कह देते ।"

उस दिन व्याख्यान का विषय था "आत्मा का स्वरूप" । सभा-स्थल श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। पादरी स्कॉट को छोड़कर पहले के शेष सभी अंग्रेज़ उपस्थित थे । आत्मा के गुणों का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने सत्य के ऊपर बोलना आरम्भ कर दिया और सिंहनाद करते हुए कहा, "लोग कहते हैं कि सत्य का प्रकाश न कीजिये, क्योंकि कलक्टर कुपित हो जायेगा, कमिश्नर प्रसन्न नहीं रहेगा, गवर्नर पीड़ा पहुँचायेगा । अजी ! चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जाये हम तो सत्य ही कहेंगे ।" इसके पश्चात् महाराज ने कुछ उपनिषद्-वाक्य बोलकर कहा, "आत्मा सत्य है । उसकी सत्ता का न कोई शस्त्र छेदन कर सकता है और न अग्नि जला सकती है । वह एक अजर, अमर और अविनाशी पदार्थ है । शरीर तो अवश्यमेव नाशवान् है जिसका ज़ी चाहे नाश कर दे । परन्तु हम देह की रक्षा के लिए सनातन धर्म को नहीं त्यागेंगे । सत्य को नहीं छोड़ेंगे ।" फिर वे अपने नेत्रों की उद्दीप्त ज्योति का चारों ओर संचार

करके बोले, "वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाइये, जो मेरे अन्तरात्मा को छिन्न-भिन्न करने का घमण्ड करता हो। जब तक ऐसा पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता, दयानन्द के लिए सत्य में सन्देह करना स्वप्न में भी असम्भव है।" यह थी ऋषि की सत्यवादिता !

महाराज सहारनपुर रेलवे स्टेशन पर विराजमान थे। श्री भोलानाथ जी ने बड़े दु:खित हृदय से स्वामी जी से कहा, "महाराज ! जैन मत वालों ने विज्ञापन निकाले हैं। वे लोग आपको जेल में बन्द कराना चाहते हैं। सहारनपुर में भी इसी विषय के विज्ञापन लगे हुए हैं।" स्वामी जी ने कहा, "भाई ! सोने को जितना तपाया जाता है उतना ही कुन्दन होता है। विरोध की अग्नि से सत्य की कान्ति चौगुनी चमकती है। दयानन्द को तो यदि कोई तोप के मुख के आगे रखकर भी पूछेगा कि सत्य क्या है, तब भी उसके मुख से वेद की श्रुति ही निकलेगी।"

दयालु दयानन्द

महर्षि दयानन्द दया की तो जीवित-जागृत प्रतिमा हो थे। उनका तो नाम ही दया से आरम्भ होता है। यदि ऋषि के सम्पूर्ण जीवन को एक वाक्य में कहना हो तो वे सिर से लेकर पैर तक सदय ही सदय थे।

संसार में अनेक प्रकार के व्यक्ति हैं। कोई काम में आनन्द लेता है तो कोई क्रोध में, कोई लोभ में आनन्द लेता है तो कोई मोह में, कोई प्रसिद्धि में आनन्द लेता है तो कोई कुल के बड़प्पन में। ऋषिराज इन सबसे निराले थे। संसार में आठ बेड़ियाँ प्रसिद्ध हैं—

घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।

स्थान के पास आकर उन्हें गालियाँ सुनाया करता था। यह क्रम बीसियों दिन तक चलता रहा परन्तु स्वामी जी ने उससे कुछ भी नहीं कहा।

ऋषिराज के पास नित्यप्रति अनेक भक्त आया करते थे। उनमें से कोई लड्डू भेंट कर जाता तो कोई पेड़े चढ़ा जाता, कोई बादाम-मिश्री आदि लाता तो कोई फल अर्पण कर जाता। स्वामी जी इन पदार्थों को प्रसाद-रूप में अपने सत्संगियों को वितरित कर दिया करते थे। एक दिन सायंकाल कुछ मिष्टान्न पड़ा रह गया। वे सोच ही रहे थे कि ये भोज्य पदार्थ किसे दें कि उन्हें प्रतिदिन गालियाँ प्रदान करनेवाला गंगापुत्र सामने से आता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने आदरपूर्वक उसे अपने पास बुलाकर वह सारी खाद्य सामग्री उसे दे दी और उसे कहा कि तुम सायंकाल नित्य हमारे पास आया करो, हम तुम्हें प्रतिदिन खाद्य पदार्थ दिया करेंगे।

जब छः-सात दिन तक वह गंगापुत्र ऋषि के मिष्टान्न पाता रहा और महाराज ने एक दिन भी उसकी गालियों की चर्चा नहीं चलाई तो उसे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ और अन्त में एक दिन महाराज के चरणों में आ पड़ा और आँखों में आँसू भरकर कहने लगा, "भगवन्! यदि मेरी कठोरता का कोई अन्त नहीं तो आपकी सहनशीलता और दयालुता भी असीम है। आपकी सुजनता ने मेरी दुर्जनता को सर्वथा जीत लिया है। मैं अपने पिछले अपराधों के लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ।" "हमने आपके वचनों को स्मृति में स्थान नहीं दिया है। आप भी उन बीती बातों को भूल जाइये।" यह कहकर ऋषि ने उसे क्षमा कर दिया। धन्य है दयानन्द तेरी दया! उनकी दयालुता की कुछ और घटनाओं का रसास्वादन कीजिये—

प्रयाग में एक दिन ऋषिवर गङ्गा के तट पर बैठे हुए प्रकृति के सौन्दर्य का अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथों पर उठाये गंगा में प्रविष्ट हुई। कुछ गहरे जल में जाकर उसने बच्चे के शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालक के शव को रोते और बिलखते हुए पानी में प्रवाहित कर दिया।

स्वामी जी इस दृश्य को देखकर अपने हृदय को न थाम सके। उन्होंने खेद-सागर में निमग्न होकर मन-ही-मन कहा कि भारत देश इतना निर्धन, इतना कंगाल है कि माता अपने कलेजे के टुकड़े को तो नदी में बहा चली है परन्तु उसने वस्त्र इसलिए नहीं बहाया कि उसका मिलना कठिन है। उन्होंने प्रण किया कि कुछ काल तक मैं इन्हीं लोगों की भाषा में प्रचार करके इनके दुःख दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

फर्रुखाबाद में महाराज श्री कालीचरण के उद्यान में बैठे हुए सत्संगियों की शंका का समाधान कर रहे थे। उसी समय एक स्त्री मरा हुआ बच्चा मैले-कुचैले वस्त्र में लपेटे लिये जाती दिखाई दी। महाराज ने पूछा, "माई! आपने इसपर श्वेत, स्वच्छ वस्त्र क्यों नहीं लपेटा?" उसने कराहकर कहा, "महाराज! मुझ धनहीन के पास स्वच्छ और नवीन वस्त्र कहाँ है जो इस पर डालती?" उसके वचन सुनकर स्वामी जी की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो गई। दीन-हीन जनों को देखकर उनका हृदय पिघल जाया करता था और पिघलता भी क्यों न, थे जो सच्चे सन्त! तुलसीदास जी ने लिखा है—

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर-दुख द्रवहि सन्त सुपुनीता।।

वास्तव में—

सच्चा सन्त वही है जिसका मानस पर-दुःखों से पिघला।
औरों की आँखों का आँसू जिसकी आँखों से बह निकला।।

ऋषिवर ऐसे ही सन्त थे। और देखिये—

फर्रुखाबाद में एक दिन स्वामी जी गंगा में पाँव फैलाए जल-विहार कर रहे थे। कुछ लड़के उन्हें देखकर आपस में कहने लगे—देखो! कितना मोटा मनुष्य है! बस, उन्हें खेल सूझा और वे गीले रेत के गोले बना-बनाकर स्वामी जी पर मारने लगे। बालप्रेमी ऋषिराज बहुत देर तक तो उन अबोध बालकों के क्रीड़ा-स्थल बने रहे, परन्तु जब बालूकण आँखों में पड़ने लगे तो वे उस स्थान से उठकर चले गये।

स्वामी जी महाराज अमृतसर की जनता को अपने मधुर उपदेशों से लाभान्वित कर रहे थे। एक दिन कुछ अबोध बच्चे स्वामी जी पर कंकर और पत्थर बरसाने लगे। पुलिस के कर्मचारियों ने अपने चातुर्य से उनमें से कुछ बच्चों को पकड़ लिया और व्याख्यान की समाप्ति पर महाराज के सामने उपस्थित किया। पुलिस के पंजे में पड़े हुए वे बालक आठ-आठ आँसू रोते थे। स्वामी जी ने उनको धैर्य देकर कंकर मारने का कारण पूछा। तब वे हिचकियाँ लेते हुए बोले, "हमको पण्डित जी ने कहा था कि तुम दयानन्द को ईंट मारना, हम तुम्हें लड्डू देंगे।"

स्वामी जी की करुणा उमड़ आई। उन्होंने उसी समय लड्डू मँगवाकर बालकों में बाँटे और कहा, "तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डू न दे, इसलिये मैं ही दिये देता हूँ।" यह थी ऋषि की दया! ठीक ही है—

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलें फलें पर-हेत।
इत ते ये पाहन हनें, उत ते वे फल देत॥

अथवा—

सज्जन को दुःखहु दिये, दुर्जन पूरै आस।
जैसे चन्दन को घिसे, सुन्दर देत सुवास॥

ऋषिराज कर्णवास में विराजमान थे। उन्हीं दिनों राव

कर्णसिंह भी वहाँ स्नानार्थ आये। रात्रि में राव के उतारे पर रास होने लगा। स्वामी जी को भी उसमें आमन्त्रित किया गया, परन्तु उन्होंने ऐसे निन्दनीय कर्म में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया। दूसरे दिन राव साहब स्वामी जी के पास आये और वितण्डा करने लगे। फिर गालियों पर उतर आये और बार-बार तलवार की मूठ पर हाथ धरने लगे। इसपर स्वामी जी ने हँसते हुए कहा, "राव महाशय! खड्ग को क्यों बार-बार संचालित करते हो? शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य को यहाँ बुलवाइये, हम कटिबद्ध हैं। परन्तु यदि शस्त्रार्थ करने का चाव है तो संन्यासियों से क्यों टकराते हो? जयपुर-जोधपुर से जा भिड़ो।"

फिर क्या था! राव महाशय का पारा पूरे १०४ डिगरी पर पहुँच गया। उन्होंने तलवार निकाल ली और स्वामी जी पर लपके। स्वामी जी ने एक बार तो 'अरे धूर्त्त' कहते हुए उसे धकेल दिया और राव महाशय लुढ़क गये, परन्तु वे पुनः स्वामी जी पर झपटे। इस बार महाराज ने उसकी तलवार छीनकर कहा, "क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी आततायी पर प्रहार कर बदला लूँ? मैं संन्यासी हूँ, तुम्हारे किसी भी अत्याचार से चिढ़कर तुम्हारा अनिष्ट-चिन्तन नहीं करूँगा। जाओ ईश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करें।" यह थी दयानन्द की दयालुता! अपने घातक पर भी दया! कैसा उज्ज्वल चरित्र है!

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल लोकोत्तर मनुष्यों के हृदय की थाह कौन पा सकता है?

अनूपशहर में ऋषि अपने वेदोपदेशों से लोगों में धर्म की भावनाएँ भर रहे थे। एक कपटी ब्राह्मण ने पान में विष दे दिया। महाराज ने सहज भाव से पान मुख में रख लिया।

परन्तु उसका रस लेते ही जान गये कि इसमें विष है। फिर भी उन्होंने उससे एक शब्द भी नहीं कहा। हाँ, गंगा पर जाकर न्योली और वस्ती कर्म से विष-प्रवाह को दूर कर पुनः अपने आसन पर आ विराजे। स्वामी जी को विष देने का भेद वहाँ के तहसीलदार को भी लग गया। उन्होंने उस नराधम विष-दाता को पकड़वाकर जेल में बन्द कर दिया। जब वे प्रसन्न होते हुए स्वामी जी के पास पहुँचे तो दयालु दयानन्द ने कहा, "सैयद अहमद जी! आपने अच्छा नहीं किया। मैं संसार को बँधवाने, कैद कराने नहीं आया अपितु बन्धनों से छुड़वाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता को न छोड़े तो हम क्यों स्वश्रेष्ठता का परित्याग करें?" अद्भुत थी दयानन्द तेरी दया! धन्य हो! धन्य थीं तुम्हारी माता और धन्य थे तुम्हारे पिता और धन्य थे तुम्हारे गुरुदेव!

स्वामी जी मनुष्यों से ही नहीं पशुओं से भी प्रेम करते थे। एक दिन स्वामी जी कोपीन मात्र धारण किये हुए सड़क पर जा रहे थे। मार्ग में कीचड़ था और एक गाड़ी के बैल उसमें फँस गये थे। गाड़ीवान बैलों को पीट रहा था, परन्तु बैल अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर भी निकल नहीं पा रहे थे। यह दृश्य देखकर दयालु दयानन्द के हृदय में करुणा उमड़ आई। वे कीचड़ में उतरे। उन्होंने बैलों को खोल दिया और गाड़ी को खेंचकर सड़क पर ला खड़ा किया। प्राणिमात्र के लिए दया की कैसी प्रबल भावना है! वे दूसरों को दुःख में देखकर स्वयं दुःखी हो जाते थे—

काँटा लगे किसी को तड़पते हैं हम 'अमीर'।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है॥

अथवा—

काँटा औरों के लगे, तड़पे साधु समान।
सारे जग के दुःख को, समझे अपनी जान॥

दयानन्द की दया का एक और उदाहरण देकर हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। जोधपुर में विश्वासघाती पाचक ने दूध के साथ कालकूट विष पिला दिया। ऋषि को इसका ज्ञान हो गया। परन्तु उन्होंने उससे तू तक भी नहीं कहा अपितु दया दर्शाते हुए बोले—"जगन्नाथ! लो ये कुछ रुपये हैं, मैं तुमको देता हूँ। यहाँ से भागकर शीघ्र नैपाल चले जाओ। यदि राठौरों को तेरी करतूत का पता लग गया तो तुम्हारी बोटी-बोटी उड़ा देंगे। जाओ, चुपचाप भाग जाओ।"

अपने प्राणघातक के प्राण बचाने की चिन्ता अतिशय दयालु के अतिरिक्त और किसे हो सकती है? संसार के इतिहास में इस प्रकार का अन्य उदाहरण और किसी जीवन-चरित्र में नहीं मिलेगा। उन्हें चौदह बार विष दिया गया परन्तु दयानन्द ने किसी को दण्ड दिलाने का प्रयत्न नहीं किया। दयानन्द ने अपनी अद्भुत दया से अपने नाम को सार्थक कर दिया।

□

कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

मिश्री की डली को जिधर से चक्खें मीठी ही लगेगी। शहद की बूँद को कहीं से भी चखिये मीठी ही प्रतीत होगी। इसी प्रकार ऋषिराज के जीवन की जिस भी घटना को देखें वही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। प्रत्येक घटना का अपना एक अलग महत्त्व है। परन्तु यहाँ सभी घटनाओं का समावेश नहीं हो सकता। अतः कुछ घटनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

जिस समय भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता की होली हो रही थी, भारतीय अपने-आपको दीन-हीन समझने लगे थे, सहस्रों गायों के ऊपर सूर्योदय से पूर्व छुरी फेर दी जाती थी, नारी अपमानित हो रही थी, स्त्री और शूद्रों का वेदाधिकार छीन लिया गया था, एक ओर अनाथ रोते और बिलखते थे, दूसरी ओर विधवाओं का रुदन होता था, भ्रूण-हत्याएँ हो रही थीं, पाखण्ड और कुरीतियाँ बढ़ रही थीं, मत-मतान्तर अपना सिर उठा रहे थे, पुजारियों की बन आई थी, मन्दिरों में व्यभिचार होता था, ऐसे भीषण समय में सन् १८२४ में श्री कर्षण जी तिवाड़ी के गृह को एक बालक ने अपने आलोक से आलोकित किया।

दयानन्द के पिता कट्टर शैव थे। अतः वे अपने पुत्र को भी शैव बनाना चाहते थे। इस अभीष्ट सिद्धि के लिए पिता जी दयाल जी (स्वामी जी का जन्म-नाम) को नाना प्रकार के व्रतों का महत्त्व बताते। जहाँ शिव पुराण की कथा होती वहाँ अपने साथ ले जाते। प्रतिदिन मिट्टी की शिवमूर्ति बनाकर उसके पूजन का भी आदेश देते। जब स्वामी जी १४ वर्ष के

हुए तो पिता ने उन्हें शिवरात्रि का व्रत रखने को आज्ञा दी। स्वामी जी सहमत हो गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से व्रत रक्खा। सारा दिन न कुछ खाया न पीया। रात्रि को पिता जी के साथ जड़ेश्वर महादेव के मन्दिर में जागरण करने के लिए गये। प्रथम पहर की पूजा बड़े भाव और भक्ति से समाप्त हुई। दूसरे पहर की पूजा भी जैसे-तैसे हुई, परन्तु तीसरे पहर तो लोगों की आँखें मिचने लगीं। सभी लोग निद्रादेवी की गोद में जाने लगे और सबसे पूर्व सोनेवाले थे स्वामी जी के पिता। मन्दिर के सेवक और पुजारी भी सो गये। परन्तु श्रद्धालु दयानन्द जागते ही रहे। थोड़ी देर में वे क्या देखते हैं कि एक छुद्र मूषक शिव की पिण्डी पर चढ़कर वहाँ चढ़ाये हुए नैवेद्य को बड़े आनन्द से खाकर दण्ड पेल रहा हैं। इस घटना को देखकर ऋषि के मन में भाँति-भाँति के संकल्प उठने लगे। वे सोचने लगे कि मुझे तो बताया गया था कि वह त्रिशूलधारी है, वह संसार-संहारी है, वह त्रिपुरारी है। क्या यह वही महादेव है? उन्होंने पिता को जगाया और अपने प्रश्न का समाधान पूछा। पिता जी के पास डाँट-फटकार के अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं था। जब उनकी शंका का समाधान न हुआ तो उन्होंने घर आकर व्रत तोड़ दिया। इस घटना से ऋषि की आस्था मूर्तिपूजा से हट गई। उन्होंने जीवन-भर फिर कभी मूर्तिपूजा नहीं की। यह है ऋषि के जीवन की सबसे प्रथम और महत्त्वपूर्ण घटना जिसने दयाल जी को दयानन्द बना दिया।

उन्हें अनेक प्रलोभन दिये गये। मठाधीश बनाने का आश्वासन दिया गया। काशी-नरेश ने तो उन्हें साक्षात् 'काशी-विश्वनाथ' मान लेने और ऐसी ही घोषणा कराने के लिए निवेदन किया था। शंकर का अवतार मानने के लिए भी कहा गया था, परन्तु ऋषि ने समस्त प्रलोभनों को ठुकरा

दिया। दो घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

बात उस समय की है जब ऋषिराज योगियों की खोज में घूम रहे थे। खोज करते-करते वे उत्तराखण्ड में बद्रीनारायण पहुँचे। भ्रमण करते हुए ओखीमठ जा पहुँचे। वहाँ काफी दिन तक रहे। वहाँ का महन्त रावल जी उनके तप, तेज और गुणों पर विमोहित हो गया। उसने स्वामी जी को प्रेरणा की कि आप हमारे शिष्य बन जाएँ, यह सब विभूति आपकी हो जाएगी। इस मन्दिर का सारा चढ़ावा भी आपका होगा। इस प्रकार आप लाखों रुपयों की सम्पत्ति के स्वामी बन जाओगे। तुम महन्त कहलाओगे और तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा भी अपार होगी।

महात्यागी दयानन्द ने इस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि मेरे पिता की सम्पत्ति आपकी पूजा-पाठ के पाखण्ड द्वारा एकत्रित की हुई सम्पत्ति से कई गुणा अधिक थी। जब मैं उसी को लोष्ठवत् समझ त्याग आया तब आपके धनधान्य की ओर कब ध्यान दे सकता हूँ!

अपने प्रचार-काल में ऋषिराज प्रचार करते हुए उदयपुर पधारे। उनके सदुपदेशों से प्रभावित होकर महाराणा सज्जन-सिंह जी भी उनके शिष्य हो गये। एक दिन महाराज अकेले बैठे हुए थे। उस समय श्री महाराज जी पधारे और स्वामी जी से प्रार्थना की, "भगवन्! आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ दें। यदि आप यह स्वीकार कर लें तो एकलिंग महादेव के महन्त की गद्दी आपकी है। इसकी आय लाखों रुपये की है। इतना भारी ऐश्वर्य आपका हो जायेगा। सारे राज्य के आप गुरु माने जाएँगे।"

ऋषि ने इसका जो उत्तर दिया, वह आस्तिकों के हृदय में उनके मान को बहुत बढ़ा देता है। उन्होंने कहा, "आप तुच्छ प्रलोभन देकर मुझे परमात्मदेव से विमुख करना चाहते

हो। राणा जी! आपके इस छोटे-से राज्य और मन्दिर से तो मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूँ, परन्तु परमात्मा के राज्य से तो किसी भी प्रकार बाहर नहीं जा सकता। मुझे ऐसे शब्द कहने का फिर कभी साहस मत करना। मेरी धर्म की ध्रुव धारणा को संसार की कोई शक्ति चलायमान नहीं कर सकती।"

ठीक भी है—

ब्रह्माण्ड मण्डली मात्रं किं लोभाय मनस्विनः।
शफरीस्फुरितैर्नाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते॥
(भर्तृ० वैराग्य शतक, ७०)

संसार का कोई भी प्रलोभन मनस्वी लोगों को उनके पथ से भ्रष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता। क्या एक छोटी मछली के कूदने से समुद्र में हलचल हो सकती है?

महर्षि दयानन्द का शील भी अद्भुत था। अनेक घटनाओं से एक घटना प्रस्तुत करते हैं—

एक पण्डित कृपाराम इच्छाराम (स्वामी जी का सेवक और लेखक) को ज्वर आ गया। ज्वर-पीड़ित वे एक कोठड़ी में जाकर पड़ गये। जब स्वामी जी को पता लगा तो वे उनकी कोठड़ी में जाकर उनका सिर दबाने लगे। पण्डित जी ने कहा—"भगवन्! आप ऐसा न कीजिये। मैं आपसे सेवा नहीं कराना चाहता।" स्वामी जी ने कहा, "इसमें कोई दोष नहीं है। एक-दूसरे की सहायता और सेवा करना तो मनुष्य का धर्म ही है। बड़े यदि छोटों की सेवा न करें तो छोटों में सेवा का भाव कहाँ से आयेगा?" कैसा अद्भुत शील है! ऋषिराज व्याख्यान-स्थल में आते समय सबको नमस्ते कहते। मेल-मिलाप के समय भी नमस्ते उच्चारण करते। उनके पास कोई कितनी ही साधारण परिस्थिति का मनुष्य क्यों न जाता, वे मुस्कराकर पहले नमस्ते कहा करते। उनके इस शील व

शिष्टाचार से प्रेमीजन मोहित हो जाते थे ।

ऋषि उच्चकोटि के विद्वान् थे, योगी थे, त्यागी थे, ब्रह्म-चारी थे । परन्तु इतना होते हुए भी उनमें अभिमान का लेश तक नहीं था ।

महाराज गुजरात में विराजमान थे । एक दिन कुछ लोगों ने स्वामी जी से पूछा, "आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?" यदि कोई और व्यक्ति होता तो झट से कह देता कि हम तो पूर्ण ज्ञानी हैं, हममें अज्ञान कहाँ ? परन्तु ऋषि दयानन्द ने कहा, "ज्ञानी भी अज्ञानी भी ।" लोगों ने कहा, "स्वामी जी ! यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो ?" ऋषि बोले, "वेद-शास्त्रादि विषयों में मैं पूर्ण ज्ञानी हूँ और फारसी, अरबी और अंग्रेज़ी आदि विषय मैं नहीं जानता, इसलिए उनमें अज्ञानी हूँ ।" कैसी निरभिमानता है ! धन्य हो दयानन्द ! लीजिये एक और घटना पढ़िये—

कानपुर में एक सज्जन ने कहा, "भगवन् ! आप तो ऋषि हैं ।" महाराज ने कहा, "ऋषियों के अभाव में आप लोग मुझे ऋषि कह रहे हैं परन्तु सत्य जानिये यदि मैं कणाद ऋषि का समकालीन होता तो विद्वानों में भी अति कठिनता से गिना जाता ।"

विनोद महापुरुषों का भूषण होता है । ऋषिवर भी इस भूषण से विभूषित थे । उनके व्याख्यानों में भी हास्य रस की पुट रहती थी । बीच-बीच में कोई ऐसा वाक्य, दृष्टान्त अथवा चुटकुला अवश्य सुनाते थे जिसे सुनकर लोग हँसी से लोट-पोट हो जाते थे । उनके विनोद युक्तिसङ्गत, शिष्ट और शिक्षाप्रद होते थे । यहाँ केवल एक प्रसङ्ग उपस्थित करते हैं—

'शिवराज विजय' के प्रणेता पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास एक दिन काशी में एक पंसारी की दुकान पर गये और पता

नहीं किस मूड में संस्कृत में ही 'गुड़स्यभाव:?' (गुड़ का भाव) पूछ बैठे । तभी पीछे से उनके कान में आवाज आई 'गुड़त्वम्' (मीठापन) । ऐसा विनोदात्मक उत्तर पा व्यास जी घूमकर देखते हैं तब तक उनको यह उत्तर देनेवाले महर्षि मुस्कराते हुए आगे बढ़ चुके थे । पं० जी ने भी सोचा कि मञ्च पर शास्त्रार्थों में पण्डितों को मुँहतोड़ उत्तर देनेवाला संन्यासी यहाँ भी बाज़ी ले गया ।

ऋषिवर का शारीरिक बल भी अद्भुत था । कासगंज की बात है । एक दिन सड़क पर मार्ग अवरुद्ध हो गया । यात्रीजन इधर-उधर रुके खड़े थे । बीच में दो सांड लड़ रहे थे, इसीलिए मार्ग रुक गया था । ऋषिवर लोगों के मना करने पर भी आगे बढ़े और सींग पकड़कर दोनों सांडों को अलग कर दिया । उस समय चैनसुख ने पूछा, "स्वामी जी ! यदि सांड सींग मारता तो आप क्या करते ?" स्वामी जी ने हँसकर उत्तर दिया, "करते क्या ! सींग पकड़कर परे धकेल देते ।"

किसी नगर में एक पहलवान को अपने बल पर बहुत गर्व था । वह प्रतिदिन प्रात: अकेला रहट चलाकर पूरा हौज भर-कर स्नान किया करता था । यह हौज़ इतना बड़ा था कि अनेक मनुष्य मिलकर भी न भर सकते थे । एक दिन उसे ऐसा करते हुए स्वामी जी ने भी देख लिया । अगले दिन स्वामी जी उससे भी पूर्व आकर हौज़ को पूर्ण भरकर आगे चले गये । जब पहलवान ने उस हौज़ को भरा हुआ देखा तो बड़ा आश्चर्य हुआ । स्थानीय कर्मचारी से पूछा कि यह हौज किसने भरा है तो पता लगा कि कुछ ही देर पूर्व एक साधु इसे भरकर आगे गया है । वह पहलवान भी उसी ओर चल दिया परन्तु ऋषि बहुत आगे जा चुके थे, अत: वह वहीं ठहर गया और सोचा लौटते समय देखूँगा । जब स्वामी जी लौटे तो उसने

पूछा, "हौज आपने ही भरा था?" स्वामी जी ने कहा, "हाँ।" पहलवान ने पूछा, "आप थके नहीं?" ऋषि ने कहा, "हमारा तो व्यायाम भी पूरा नहीं हुआ। उस कमी की पूर्ति के लिए दौड़ और लगानी पड़ी।" ऐसे बलशाली थे दयानन्द!

ज्ञान की प्रप्ति गुरुभक्ति से होती है। महर्षि दयानन्द में गुरुभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। ऋषि प्रतिदिन गुरु जी के स्नान के लिए यमुना से कई घड़े जल लाया करते थे। ऋषिवर गुरु विरजानन्द जी की ताड़ना और भर्त्सना को भी कृपा-प्रसाद ही समझते थे।

एक दिन की बात है स्वामी विरजानन्द जी ने कोपावेश में दयानन्द जी पर डण्डे का प्रहार किया कि उनकी भुजा पर चोट आ गई। परन्तु अपनी पीड़ा का कोई ध्यान न कर वे गुरु जी के हाथ दबाने लगे और कहा, "महाराज! मेरा शरीर अति कठोर है और आपके हाथ कोमल हैं। मारने से आपके क्लेश होता होगा, अतः मुझे मारा न कीजिये।"

गुरु के लिए दयानन्द के हृदय में कैसी भक्ति और निष्ठा थी। आज के अविनीत विद्यार्थियों को इस घटना से शिक्षा लेकर अपने गुरुओं का आदर और सत्कार करना चाहिए। आज अनेक विद्यार्थी एम० ए० और बी० ए० करके बेकार फिरते हैं। इसका कारण है विद्यार्थियों की गुरुओं के प्रति अश्रद्धा और गुरुओं का शाप।

महापुरुषों के पावन चरित्र वे दीप्तिस्तम्भ हैं जो भूले-भटके मानवों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। महर्षि की इस जीवनी का पाठ करते हुए हम ऋषि के गुणों को अपने जीवन में धारण करते हुए सच्चे

मानव बनने का प्रयत्न करें। हम मानव बनें और कैसे मानव—

आदमी बन जो धरा का भार कन्धों पर उठाये।
बाँट दे जग को, न अमृत-बूँद अधरों से लगाये॥
है जरूरत आज ऐसे आदमी की सृष्टि को फिर।
विश्व का विषसिन्धु पी जाये मगर हिचकी न आये॥

□

उपसंहार

महर्षि दयानन्द गुणों की खान थे। सद्गुणों ने उन्हें अपना निवास-स्थान बनाया था। कोई व्यक्ति योगी होता है तो कोई दार्शनिक, कोई विद्वान् होता है तो कोई पहलवान, कोई क्रान्तिकारी होता है तो कोई सुधारक, कोई राजनीतिज्ञ होता है तो कोई ईश्वरभक्त, कोई परोपकारी होता है तो कोई दयालु, कोई ब्रह्मचारी होता है तो कोई तपस्वी, कोई सुधारक होता है तो कोई ओजस्वी वक्ता। महर्षि दयानन्द सभी सद्गुणों का संगम थे। यह था ऋषि का निरालापन! एक कवि के शब्दों में—

गुलिस्ताँ में जाकर हर इक गुल को देखा।
न तेरी-सी रंगत न तेरी-सी बू है॥

गुणों के ही क्या, स्वामी जी महापुरुषों के भी संगम थे। महापुरुषों के जीवनों के सब उत्कृष्ट अंश स्वामी जी के जीवन में उपलब्ध होते हैं। इस विषय में स्वामी सत्यानन्द जी ने क्या ख़ूब लिखा है—

"महाराज के उच्चतम जीवन की घटनाओं का पाठ करते समय हमें तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आज तक जितने भी महात्मा हुए हैं उनके जीवनों के सभी समुज्ज्वल अंश दयानन्द में पाये जाते थे। वह गुण, गुण ही न होगा जो उनके सर्वगुण-सम्पन्न स्वरूप में न विकसित हुआ हो। महाराज का हिमालय की चोटियों पर चक्कर लगाना, विन्ध्याचल की यात्रा करना, नर्मदा के तट पर घूमना, स्थान-स्थान पर साधु सन्तों के शुभ दर्शन और सत्संग प्राप्त करना, मंगलनाम श्री राम का हमें स्मरण कराता है। कर्णवास में

कर्णसिंह के बिजली की भाँति चमकते खड्ग को देखकर भी महाराज नहीं काँपे। तलवार की अति तीक्ष्ण धार को अपनी ओर झुका हुआ अवलोकन करके भी निर्भय बने रहे और साथ ही गम्भीर भाव से कहने लगे कि आत्मा अमर है, अविनाशी है, इसे कोई हनन नहीं कर सकता। यह घटना और ऐसी ही अन्य अनेक घटनाएँ, ज्ञान के सागर श्री कृष्ण को मानस-नेत्रों के आगे मूर्तिमान बना देती हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो वे ही बोल रहे हैं।

अपनी प्यारी भगिनी और पूज्य चाचा की मृत्यु से वैराग्यवान् होकर वन-वन में कोपीनमात्रावशेष दिगम्बर दशा में फिरना, घोरतम तपस्या करना और अन्त में मृत्युञ्जय महौषध का ब्रह्म-समाधि में लाभ कर लेना, महर्षि के जीवन का यह अंश बुद्धदेव के समान दिखाई देता है।

दीन-दु:खियों, अपाहजों और अनाथों को देखकर श्रीमद्दया-नन्द जी क्राइस्ट बन जाते हैं। धुरन्धर वादियों के सम्मुख श्री शङ्कराचार्य का रूप दिखा देते हैं। एक ईश्वर का प्रचार करते हुए और विस्तृत भ्रातृभाव की शिक्षा देते हुए भगवान् दयानन्द जी श्रीमान् मोहम्मद जी प्रतीत होने लगते हैं। ईश्वर का यशोगान करते हुए स्तुति-प्रार्थना में जब प्रभु दयानन्द इतने निमग्न हो जाते हैं कि उनकी आँखों से परमात्म-प्रेम की अविरल अश्रुधारा निकल आती है, गद्गद कण्ठ और पुलकितगात हो जाते हैं तो सन्तवर रामदास, कबीर, नानक, दादू, चेतन और तुकाराम का समाँ बँध जाता है। वे सन्तशिरोमणि जान पड़ते हैं। आर्यत्व की रक्षा के लिए वे प्रात:स्मरणीय प्रताप, श्री शिवा जी तथा गुरु गोविन्दसिंह जी का रूप धारण कर लेते हैं।

महाराज के जीवन को जिस पक्ष में देखें, वह सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतीत होता है। त्याग और वैराग्य की उनमें न्यूनता

नहीं है। श्रद्धा और भक्ति उनमें अपार पाई जाती है। उनमें ज्ञान अगाध है। तर्क अथाह है। वह समयोचित मति का मन्दिर है। प्रेम और उपकार का पुन्ज है। कृपा और सहानुभूति उसमें कूट-कूटकर भरी पड़ी है। वह ओज है, तेज है, परम प्रताप है, लोकहित है और सकलकला सम्पूर्ण है।"

स्वामी जी के उपकार और गुण इतने हैं कि मेरे जैसा अल्प बुद्धिवाला व्यक्ति उन्हें लिख नहीं सकता। एक कवि के शब्दों में—

इक आँख से बुलबुला क्या कुछ देखे।
साहिल को मँझधार को या बहर को देखे॥

अन्त में एक कविता स्मरण आ रही है जिसे लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

सकल रज-रेणुओं को मणियों पर वार डारूँ।
मणियों को वार डारूँ सूरज और चन्द्र पै॥
सूरज और चन्द्रमा को स्वर्गहु पै वार डारूँ।
स्वर्गहु को वार डारूँ भारत सुखकन्द पै॥
भारत की भूमि को भगतों पै वार डारूँ।
भगतों को वार डारूँ देवता स्वच्छन्द पै॥
सकल देवताओं को ऋषियों पै वार डारूँ।
ऋषियों को वार डारूँ ऋषि दयानन्द पै॥

□

लोकमत में दयानन्द

महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने समय-समय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। ये विचार महर्षि की महत्ता के परिचायक हैं, अतः सहस्रों सम्मतियों में से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

महात्मा (मोहनदास कर्मचन्द) गांधी :—

महर्षि दयान्द के लिए मेरा मन्तव्य है कि वे हिन्द के आधुनिक ऋषियों में. सुधारकों में श्रेष्ठ, पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार-स्वतन्त्रता, उनका सबके प्रति प्रेम, उनकी कार्यकुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते हैं। उनके जोवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है।

माता कस्तूरबा :—

स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है, इसलिये केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं वरन् सारी दुनिया के वे पूज्य हैं।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस :—

स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो उसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के कारण हुए।

डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर :—

"मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदरपूर्वक श्रद्धाञ्जलि देता हूँ, जिसने देश को पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।

साधु टी० ऐल० वासवानी :—

ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्यसंग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हूँ।...दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अतः मैं राष्ट्रीय वीर समझकर उनकी वन्दना करता हूँ।

सर यदुनाथ सरकार :—

जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जाएगा तो नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्च आसन पर बैठाया जाएगा।

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय :—

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं।

देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी :—

स्वामी दयानन्द उन रोशनी के मीनारों में से एक हैं जो संसार को सत्य मार्ग दिखाने के लिए आते हैं और भटकते लोगों को मार्ग दिखाकर चले जाते हैं।

प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक रोम्याँ रोलाँ :—

ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्तिशून्य शरीर में अपनी दुर्द्धर्ष शक्ति, अविचलता तथा पराक्रम फूंक दिये हैं।

लौह पुरुष सरदार पटेल :—

वह देश के विभूति-रूप थे। उन्होंने आर्य संस्कृति की रक्षा की, वेदों का पुनरुद्धार और आर्ष शैली से प्रचार किया। आर्येतर जनों को भी आर्य धर्म में दीक्षित हो जाने का अधिकार दिया, यह उनकी विशेषता थी।

अनन्तशयनम् अय्यंगार :—

यदि महात्मा गांधी राष्ट्रपिता हैं तो महर्षि दयानन्द राष्ट्रपितामह। महर्षि दयानन्द ने देश की स्वतन्त्रता, विदेशी शासन के निवारण तथा स्वधर्म और संस्कृति के प्रेम की

प्रेरणा और मन्त्र दिया। स्वामी जी ने सारे विश्व को आर्य बनाने की प्रेरणा दी।

सर सय्यद अहमद खाँ :—

स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेदज्ञाता थे। वे विद्वान् ही नहीं अपितु एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी थे। वे परमहंस के गुणों से विभूषित थे। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी। हमारा स्वामी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था, और हम उनका आदर करते थे। वे ऐसे विद्वान् और श्रेष्ठ व्यक्ति थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे। वह ऐसे पुरुष थे कि जिनके समान इस समय भारत में कोई नहीं मिल सकता।

श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए० :—

महर्षि दयानन्द भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदा चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वे भारत-माता के उन सपूतों में से थे कि जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाये थोड़ा है।

लाला हरदयाल जी एम० ए० :—

भारतवर्ष के इतिहास में स्वामी जी का नाम बड़े सुधारकों की पवित्र श्रेणी में सोने के अक्षरों से लिखा जायेगा।

आनरेबल राजा सर मोतीचन्द्र :—

मैं आर्यसमाजी नहीं हूँ पर श्री स्वामी जी को हिन्दू जाति का रक्षक मानता हूँ। उन्होंने गिरती हुई हिन्दू जाति को बचा लिया। लोगों की आँखें खोल दीं। उनकी बदौलत वेदों का पढ़ना-पढ़ाना शुरू हो गया। संस्कृत और हिन्दी का प्रचार बढ़ गया। प्राचीन संस्कारों को लोग समझने लगे। हिन्दुओं में आर्यत्व आ गया। यह प्रकाश दयानन्द-रूपी सूर्य से मिला है। इसलिए हम लोग सदा उनके अनुगृहीत रहेंगे।

राव राजा तेजसिंह वर्मा :—

जिस दिन तक सूर्य और चन्द्र भूमण्डल पर प्रकाश करते हैं ऋषि की जीवनी भी मनुष्यों के जीवन का पथप्रदर्शक बनी रहेगी।

भारतकोकिला सरोजिनी नायडू :—

लोग ऋषि दयानन्द की शिक्षा को समझ न सके। मैं तो ऋषि दयानन्द को श्री कृष्ण की बाँसुरी बजाते हुए स्वतन्त्रता और कर्तव्य का पाठ पढ़ाते हुए देखती हूँ। ऋषि की भाषा में सौन्दर्य बलिदान है, सौन्दर्य स्वतन्त्रता है। ऋषे! तेरी प्रशंसा में वाणी कुण्ठित है।

कर्नल अलकाट, प्रेजीडेण्ट थियोसोफिकल सोसायटी :—

उनकी मृत्यु से भारत माता ने अपने योग्यतम पुत्रों में से एक को खो दिया।

बालगंगाधर लोकमान्य तिलक :—

स्वामी दयानन्द की योग्यता और उनकी तार्किक बुद्धि की मैं प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। वे एक महापुरुष थे जो हमारे बीच से चल बसे। स्वामी जी के जीते-जी उनके कार्य का गौरव न हो सका, परन्तु एक समय आयेगा जबकि समस्त भारत उनके आदर्शों के सामने सिर झुकाएगा।

संघ-संचालक गुरु गोलवलकर जी :—

अपनेपन का उद्दीप्त स्वाभिमान लेकर उन्होंने सोये समाज को जागृत किया। अनुकरण की दास-वृत्ति पर प्रहार कर स्वतन्त्र प्रतिभायुक्त राष्ट्रीय आस्था का सन्देश दिया। जीवन का कोई क्षेत्र उनके तेजस्वी विचारों से अस्पृश्य नहीं रहा।

स्वातन्त्र्य-वीर सावरकर :—

मेरे हृदय में हमारे आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द के लिए सबसे अधिक आदर और सम्मान है।··· स्वामी दयानन्द वस्तुतः एक ऋषि, उच्च कोटि के सुधारक, न्यायप्रिय और देशभक्त थे।

श्रीयुत सी० एस० रंगा अय्यर एम० एल० ए० :—

ऋषि दयानन्द संसारभर के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों में से थे। उनका स्थान ऋषि-पदवी से भी श्रेष्ठ था। वे महर्षि थे। मैं इससे भी आगे जाता हूँ और उन्हें ब्रह्म-ऋषि की पदवी से सम्बोधित करता हूँ। मेरी सम्मति में वे वसिष्ठ और विश्वामित्र के समान हैं।

योगी अरविन्द घोष :—

दयानन्द का व्यक्तित्व अपनी प्रणाली और काम के कारण अद्भुत था। दृष्टान्त के रूप में यूँ समझिये कि कोई व्यक्ति देर तक पर्वतमाला के बीचोंबीच चला जा रहा है। पर्वतों में कोई बहुत ऊँचे हैं, कोई बहुत कम, परन्तु अतीव सुन्दर, रमणीय और अपनी विशेष ऊँचाई के कारण सभी चित्ताकर्षक हैं। फिर उनमें एक पर्वत बिल्कुल अलग खड़ा है। बड़ा महत्त्वशाली और दृढ़ प्रस्तरमय है। उसकी चोटी पर हरयाली दृष्टिगोचर होती है और एक-अकेला देवदारु का वृक्ष आकाश से बातें कर रहा है। इस पर्वत के भीतर से स्वच्छ और उपजाऊ जल का प्रबल स्रोत बड़े वेग से बहता हुआ उपत्यका की ओर दौड़ रहा है, मानो वह उस उपत्यका का जीवनमूल है। यह संस्कार है जो दयानन्द का व्यक्तित्व मेरे मन पर डालता है।

रायबहादुर पं० सीताराम जी एम० ए० :—

श्री राममोहन राय, श्री केशवचन्द्र सेन, श्री रामकृष्ण-परमहंस और श्री विवेकानन्द भी हिन्दू धर्म के विशिष्ट सुधारकों में शिरोमणि हैं। परन्तु वात के रोग को जीर्ण शरीर से निकाल इसमें अच्छा बल उत्पन्न कर देने का श्रेय महात्मा स्वामी दयानन्द जी को ही देना चाहिए।

जर्मन प्रो० डा० विण्टरनीज :—

हमें वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहन देने और यह सिद्ध करने में कि मूर्तिपूजा वेदसम्मत नहीं है, स्वामी दयानन्द के महान् उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। आर्य-समाज के प्रवर्तक वर्तमान जातिभेद की मूर्खता और उसकी हानियों के विरुद्ध अपने अनुयायियों को तैयार करने के अतिरिक्त यदि और कुछ भी न करते तो भी वे वर्तमान भारत के बड़े नेता के रूप में अवश्य सम्मान पा जाते।

प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक पाल रिचर्ड :—

स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक ऋषि थे। उन्होंने अपने विरोधियों द्वारा फेंके गये ईंट-पत्थरों को शान्तिपूर्वक सहन कर लिया। उन्होंने अपने में महान् भूत और महान् भविष्यत् को मिला दिया। वह मरकर भी अमर हैं। ऋषि का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त करने और जाति-बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था।

श्रीमती एनी बीसेण्ट :—

स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए' का नारा लगाया था।

कांग्रेस के संस्थापक ह्यूम :—

वे एक विशाल और श्रेष्ठ पुरुष थे। अपने देश के लिए गौरवस्वरूप थे। दयानन्द को खोकर भारतवर्ष को बहुत हानि उठानी पड़ी।

प्रो० मैक्समूलर :—

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दूधर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया, और जहाँ तक समाज-सुधार का सम्बन्ध है, वे बड़े उदारहृदय थे। वे अपने विचारों को वेद पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे ज्ञात होता है कि वे पूर्ण

अभिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।

ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री मैकडानल्ड :—

आर्यसमाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धान्त दिया। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है।

एस० डी० स्टोक्स :—

निस्सन्देह स्वामी जी एक महान् पुरुष, संस्कृत के गम्भीर विद्वान्, उत्कष्ट साहस और स्वावलम्बन से युक्त तथा मनुष्यों के नेता थे।

एस० एल० पोलक :—

स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा और निर्भय पुरुष थे। वे अपने धार्मिक विश्वासों पर अटल रहे, इसलिए नहीं कि वे अपने विचारों के कट्टर पक्षपाती थे किन्तु इसलिए कि वे सत्य के परम भक्त थे।

रेवरेण्ड सी० एफ० एण्डरूज :—

स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्सन्देह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करनेवाले महानुभाव थे। वे सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।

मौलाना हसरत मुहानी :—

जब तक लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने में लगे थे।

पीर मुहम्मद यूनिस :—

ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से भारतीयों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के

सिर बाँधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है। उन्नीसवीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है, उसने हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुंचाया है।

प्रो० एम० रङ्गाचार्य :—

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के विख्यात पुरुषों की श्रेणी में एक उज्ज्वल नक्षत्र थे।

राजा बरखण्डी महेशप्रतापनारायणसिंह, शिवगढ़ राज्य

एक सनातन धर्मी की हैसियत से मैं स्वामी दयानन्द को वर्तमान भारत का सर्वप्रथम सुधारक मानता हूँ। स्वामी जी महाराज ने मरणोन्मुख आर्यजाति को उठाया और उसका प्राचीन आदर्श बतलाकर सत्पथ में प्रवृत्त किया, इसके लिए हमें स्वामी जी का आभारी होना चाहिए।

आनरेबल जी० एस० खापड़े :—

यह कार्य जो ऋषि दयानन्द ने अपने लिए चुना, अत्यन्त महान् था और उन्होंने उसे बड़ी उत्तमता से पूरा किया। उन्होंने वेदों को देव-मन्दिरों के छिपे हुए कानों से निकालकर मनुष्यमात्र की पूजा के लिए रख दिया।

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी :—

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के उन धार्मिक महापुरुषों में से एक हैं जिनका गुणानुवाद करने में ही जीवन समाप्त हो सकता है। उन्होंने मन, वचन और कर्म की स्वतन्त्रता का सन्देश दिया तथा मानवमात्र की समानता का आदेश दिया। वे अपने जीवन और मृत्यु में महान् ही रहे।

कविवर पं० विद्याभूषण 'विभु' :—

तुम कहते हो दयानन्द जो यहाँ न आते क्या होता।
मैं कहता हूँ पड़ा-पड़ा यह भारत तो बेसुध सोता॥

मन्दिर की मस्जिद हो जाती फिर कुरान कर में होता।
बपतिस्मा लेकर या भारत अब गिरजाघर में होता॥
तुम कहते हो क्या होता जो यहाँ नहीं ऋषिवर आते।
मैं कहता हूँ एक आर्य भी नहीं कहीं ढूँढे पाते॥

श्री हीरालाल जी सूद, सब-जज :—

दयानन्द का जन्म हुआ श्रुति के हित धारण।
दयानन्द का मरण हुआ वेदों के कारण॥
दयानन्द थे आर्य धर्म के पुनरुद्धारक।
दयानन्द थे आत्मज्ञान के पूज्य प्रचारक॥
दयानन्द की वेद-भाष्य-शैली जो जाने।
विद्या का अवतार उसे माने फिर माने॥
बोलो मित्रो, दयानन्द स्वामी की जय हो!
ऋषियों के सरताज मोक्षधामी की जय हो!

पं० यज्ञदत्त शर्मा उपाध्याय :—

छूतछात त्याग का अछूता उपदेश दिया।
भद्दी भेद-भावना के भूत को भगा गया॥
वैर को विसार पुण्य-प्रीति का पाठ पढ़ाया।
हृदयों को प्रेम के पीयूष में पगा गया॥
झूठे देवी-देवों के प्रपञ्च से छुड़ा के एक।
ईश की उपासना में सबको लगा गया॥
देशहित साध के, दिवाली को सदा के लिए।
आप सो गया पै ऋषि जग को जगा गया॥

राजकुमार रणञ्जय सिंह अमेठी :—

सद्गुरु सब सद्गुण की खान, अद्वितीय वैदिक विद्वान्।
नमस्कार है बारम्बार, दयानन्द मुनिराज उदार॥

महाकवि 'शंकर' :—

आनन्द सुधासार दया का पिला गया।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया॥

महर्षि-कृत ग्रन्थ-परिचय

दिव्य दयानन्द लगभग २० वर्ष कार्यक्षेत्र में रहे परन्तु उनके ग्रन्थ प्रायः संवत् १६३० के पश्चात् अर्थात् १० वर्ष में ही लिखे गये। श्री पं० महेशप्रसाद जी मौलवी, आलिम-फ़ाज़िल के लेखानुसार ऋषि द्वारा लिखित समग्र सामग्री ६॥×६ इन्च आकार के लगभग १५ सहस्र पृष्ठों की बैठती है। १० वर्ष के अत्यल्प काल में इतना लेखन-कार्य अपना विशेष महत्त्व रखता है। प्रस्तुत पुस्तक का कलेवर आज्ञा नहीं देता कि सभी पुस्तकों के सम्बन्ध में विशिष्ट परिचय दिया जाय, अतः ऋषि के तीन ग्रन्थों का ही सामान्य परिचय यहाँ उपस्थित करता हूँ—

सत्यार्थप्रकाश :—महर्षि दयानन्द का यह ग्रन्थ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह ऋषि के सम्पूर्ण मन्तव्यों, सिद्धान्तों और उपदेशों का सार है। इसका अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और चीनी आदि विदेशी भाषाओं में तथा संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, उड़िया, सिन्धी आदि भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

इसके दो भाग हैं—एक पूर्वार्द्ध, और दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में १० समुल्लास हैं और उनमें सभी वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। ये समुल्लास मण्डनात्मक हैं। उत्तरार्द्ध में ४ समुल्लास हैं जिनमें पुरानी, जैनी, किरानी और कुरानी तथा भारत के अन्य मतमतान्तरों की विस्तृत समालोचना की गई है। यह खण्डन-भाग कहलाता है। इस सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम० ए० कहा करते थे—"यदि 'सत्यार्थप्रकाश' की एक

प्रति का मूल्य १०००) रुपया होता, तो भी मैं उसे अपनी सारी जायदाद बेचकर भी खरीदता। मैं जिधर भी देखता हूँ उधर ही 'सत्यार्थप्रकाश' में वह विद्या की बातें भरी पाता हूँ जिनका वर्णन करते हुए बुद्धि चकित हो जाती है। मैंने १८ बार सत्यार्थप्रकाश को विचारपूर्वक पढ़ा है और जब-जब उसे पढ़ा तब-तब नये-से-नये अर्थों का भाव मेरे मन में हुआ है।

श्री सी० एस० रंगा अय्यर ने लिखा—"मैंने स्वराज्य का रहस्य सत्यार्थप्रकाश में पाया। अगर यह हमारी प्राचीन जाति सत्यार्थप्रकाश की शिक्षाओं के अनुकूल चले तो इस पृथिवी की कोई भी शक्ति हमारे स्वाधीनता के दिनों को नहीं हटा सकती।"

सचमुच यह एक अद्भुत ग्रन्थ है, इसकी शिक्षाएँ महान् हैं, इसके तर्क अकाट्य हैं, इसके उपदेश जीवनप्रद हैं।

ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका :—ऋषि चारों वेदों पर भाष्य करना चाहते थे। चारों वेदों के भाष्य की यह भूमिका है। ऋषि की वेदार्थ-शैली का इसमें दिग्दर्शन है। इस पुस्तक में वेदोत्पत्ति, गणित, तार, विमान, उपासना, मुक्ति, वैद्यक, सृष्टि-उत्पत्ति, वर्णाश्रम-धर्म, पुनर्जन्म आदि ५२ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। वेदों के वास्तविक रहस्य और तात्पर्य को समझने के लिए इस ग्रन्थ का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में उस समय के विख्यात समालोचक मुन्शी कन्हैयालाल जी अलखधारी लिखते हैं—"सत्य तो यह है कि बादशाहों के वचनों को समझने के लिए बादशाही दिमाग चाहिए और ऋषिवरों के वचनामृत को समझने के लिए ऋषिवरों का दिमाग चाहिए। बादशाह और ऋषिवर कभी अनुचित और तर्कशून्य वचन नहीं कहते। स्वामी जी महाराज की इस पुस्तक द्वारा बदमाश की

बदमाशी इस तरह चली जायेगी जिस प्रकार हवा से बादल और गधे के सिर से सींग चले जाते हैं···मन्दभाग्य होगा वह मनुष्य जो श्री स्वामी जी महाराज की इस पुस्तक के लाभ से वञ्चित रहेगा।"

प्रो० मैक्समूलर लिखते हैं—"हमें तमाम संस्कृत साहित्य को दो भागों में विभाजित करना चाहिये जो कि ऋग्वेद से आरम्भ होता है और दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर समाप्त होता है। स्वामी जी की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका बहुत मनोरंजक पुस्तक है।"

संस्कारविधि :—वैदिक धर्म में संस्कारों का बड़ा भारी महत्त्व है। ऋषि-सन्तान इस महत्त्व को भूल चुकी थी। इस पुस्तक में महर्षि ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर सोलह संस्कारों का विशद वर्णन किया है। 'गर्भाधान' सबसे पहला संस्कार है और 'अन्त्येष्टि कर्म' अन्तिम। इस ग्रन्थरत्न के सम्बन्ध में श्री मास्टर आत्माराम जी लिखते हैं, "सोलह संस्कार सच जानो संगठन के सोलह रंग हैं। मरी हुई हिन्दु आर्य जाति इनके बल से फिर जीवित होकर संसार में कर्मवीर, ज्ञानवीर, उपासनावीर, महान् आर्य जाति बन सकती है। आवश्यकता है कि षोडश संस्कारों के भक्त हम बन सकें।"

इन तीनों ग्रन्थों को आर्य जगत् की प्रस्थानत्रयी कहा जा सकता है। अब अन्य ग्रन्थों का भी कुछ परिचय लीजिए—

ऋग्वेद-भाष्य :—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को समाप्त करके ऋषिराज ने ऋग्वेद-भाष्य प्रारम्भ किया। परन्तु हमारे दुर्भाग्य से ऋषि इस कार्य को पूर्ण नहीं कर पाये। ऋग्वेद में १०५८९ मन्त्र हैं परन्तु स्वामी जी ५६२९ मन्त्रों का ही भाष्य कर सके। महर्षि का भाष्य सातवें मण्डल के

६१वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक है। ऋग्वेद-भाष्य की पृष्ठ-संख्या ८५७३ है।

यजुर्वेद-भाष्य :—ऋषि ने यजुर्वेद का भाष्य ऋग्वेद-भाष्य के एक मास के बाद आरम्भ किया। यजुर्वेद में ४० अध्याय और १९७५ मन्त्र हैं। यह भाष्य सम्पूर्ण है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३६०० है।

आर्याभिविनय :—इस पुस्तक में ऋग्वेद और यजुर्वेद के १०८ मन्त्रों की संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित और भावमयी व्याख्या है। ऋषिवर एक सच्चे सन्त, आस्तिक और ईश्वर-भक्त थे। श्री पं० भगवदाचार्य जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है—"वह बहुत बड़े आस्तिक थे। वह ईश्वर के उतने ही अनन्य विश्वासी थे जितना कि वर्तमान समय में महात्मा गांधी।" इस पुस्तक में ऋषि की अन्तरात्मा के शब्द मुखरित हो उठे हैं। भक्त पढ़ते-पढ़ते आनन्दविभोर हो जाता है। दैनिक पाठ के लिए अति उपयोगी है।

आर्योद्देश्यरत्नमाला :—इस ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द ने अपने प्रमुख-प्रमुख सिद्धान्तों को एक माला में गूँथा है। यह माला सौ रत्नों की है। प्रत्येक रत्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पुस्तक बहुत छोटी है, परन्तु महत्त्व में किसी बड़े-से-बड़े ग्रन्थ से भी कम नहीं है। इस पुस्तक में आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, प्रार्थना, उपासना, मुक्ति, तीर्थ आदि सौ शब्दों की परिभाषाएँ हैं।

पञ्चमहायज्ञविधि :—वैदिक धर्म में प्रतिदिन पञ्च-यज्ञ करने का विधान है। इस पुस्तक में इन यज्ञों को करने की विधि पर प्रकाश डाला गया है।

गोकरुणानिधि :—प्रतिदिन सहस्रों की संख्या में गो-वध होता देखकर दयालु दयानन्द ने गौ आदि मूक पशुओं का प्रतिनिधि बनकर इस ग्रन्थ को लिखा है। इस पुस्तक में

महर्षि ने गणित की रीति से हिसाब लगाकर यह सिद्ध किया है कि एक गौ से ४ लाख ७५ सहस्र मनुष्यों का पालन एक बार में होता है।

इस पुस्तक में मांस-भक्षण का भी प्रबल खण्डन किया गया है। ऋषि लिखते हैं—"मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं। दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि मारने की विधि नहीं लिखी।" आदि।

व्यवहारभानु :—हमें किसी के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, यही इस पुस्तक का विषय है। पुस्तक बहुत ही रोचक और मनोरंजक है। छोटे-छोटे दृष्टान्त देकर विषय को समझाया गया है।

संस्कृत-वाक्य-प्रबोध :—यह पुस्तक संस्कृत बोलने के सम्बन्ध में है। इसमें संस्कृत के वाक्य देकर उनके सामने हिन्दी में अनुवाद दिया गया है।

वेदाङ्गप्रकाश :—वह व्याकरण शास्त्र है। इसमें ऋषि पाणिनि द्वारा प्रणीत अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या है।

इसके अतिरिक्त भ्रमोच्छेदन, अनुभ्रमोच्छेदन, भ्रान्ति-निवारण, वेद-विरुद्ध मत-खण्डन, स्वामी नारायण मत-खण्डन, वेदान्तिध्वान्त निवारण, पाखण्ड-खण्डन, अद्वैत मत-खण्डन तथा अष्टाध्यायी-भाष्य (अपूर्ण) आदि ग्रन्थों का नाम भी उल्लेखनीय है।

।। समाप्त ।।

□□